Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 1

मूल्य: ₹10.00

अगस्त, 2026

कलरव

KALRAV

बागी नहीं बदलाव के वाहक है युवा

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 2

Three Unique Dailies For Everyone In The Family

AAJ KA ANAND	SANDHYANAND	Life 365
Hindi Daily: Published Since 41 years	Marathi Daily : Published Since 20 years	English Daily : Recently Lannched, Unique Daily

Aaj Ka Anand Papers Ltd., (Since 1971)

RNI-UPHIN-2006/18176

सच और साहस की थपकी का अगस्त, 2026

कलरव

ताकि बना रहे अहसास KALRAV

वर्ष : 20 अंक : 11

संपादक
अनिल तिवारी

प्रबंध संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यकारी संपादक
वर्षा सिंह

उप संपादक
संध्या शुक्ला

विशेष संवाददाता
नचिकेता पटनायक
संजय कुमार

फोटो - संपादक
चमन गौतम

साज-सज्जा
राधेश्याम

कानूनी सलाहकार
कुंअर जयसिंह

(उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं)

स्वामी, मुद्रक व प्रकाशक शोभा तिवारी द्वारा एबीएम ग्राफिक्स, सी-440, सेक्टर-10, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर, (उत्तर प्रदेश) व डीटी प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, माजरा, देहरादून से मुद्रित तथा 93ए, अरावली अपार्टमेंट, सेक्टर-52, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित।

कार्यालय: सी-288, सेक्टर-10 नोएडा, गौमतबुद्धनगर, यू.पी. फोन: 0120-6545602
E-mail : kalarvms@rediffmail.com
Website: www.jankalrav.com

सौजन्य: सहयोग
707, पत्रकार विहार, इंदिरापुरम, गाजियाबाद

अनुक्रम

06 बागी नहीं बदलाव के वाहक है युवा

08 युवा शक्ति : इतिहास, राजनीति और परिवर्तन की अनवरत यात्रा

14 सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने शुरू हो गए.....

16 अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन

18 जे. पी. आन्दोलन के स्मरणीय प्रतिफल

20 असम में छात्रों का सफल आंदोलन

22 सामाजिक न्याय और असहमति के निर्णायक दौर में छात्रों ने भरी हुंकार

24 अन्ना हज़ारे का भ्रष्टाचार-विरोधी आंदोलन- जनता ने चाहा जनलोकपाल

27 दलों की बैसाखी बनने से जेन अल्फा का इनकार

32 बुरा ही मानिए क्योंकि ठीक नहीं है गाली

34 लोकतंत्र में संवाद ही है समाधान

36 चुनौतियों के बीच भी कायम रही भारत की चमक

38 आरसीएल सीजन-4 से 'भूख मुक्त भारत' की अनोखी पहल

जेन-जी में जिंदा है लोकतंत्र

अनिल तिवारी

लगातार चुनाव जीतने के नाम पर मौजूदा सरकार ने अपने अश्वमेध का जो घोड़ा छोड़ रखा था, उसे युवाओं ने पकड़ कर बांध लिया है। चीन के थियेनआनमन चौक की तरह अभिमन्यु के फिर से मारे जाने की भविष्यवाणी गलत निकली।

भीषण युद्धों, वैचारिक आंदोलनों और आपसी असहमतियों के भंवर से छनकर निकली सहमतियाँ भी अपने पीछे कुछ यक्षप्रश्न छोड़ जाती हैं। जो उनकी अनदेखी करते हैं, उन्हें बाद में पछताना पड़ता है।

देश की राजधानी दिल्ली के जंतर मंतर का युवा आंदोलन देश के युवाओं को सियासी विमर्श के बीच ला खड़ा किया। यह विमर्श जरूरी था, है और आगे भी रहेगा। इस आंदोलन का सबसे बड़ा हासिल इसे ही माना जाना चाहिए। लेकिन यह समझौते की सीधी उपज है। पीछे जो छूट गया है, वह है सोशल मीडिया का पसंदीदा आख्यान।

इस आंदोलन के जो रील्स, मीम्स आदि वाइरल हुए हैं, उन्हें ध्यान से देखिये।

गाली देते युवा, दबाव पड़ने पर माफी की दरख्वास्त करती लड़कियां, मारपीट करते शोहदे, अश्लील हिंसा में लिप्त वर्दी वाले, उनका मज़ाक उड़ाते नौनिहाल इत्यादि। फिर पन्ना पलटिए, एक दूसरे की मदद, चोट लगने पर मरहम पट्टी करते बच्चे, पानी पिलाते, कुड़ा इकट्ठा करते, नाच गाकर इंकलाब जिंदाबाद की आवाज बुलंद करते, मोर्चा के लिए निकले बच्चे, पुलिस के साथ दो-दो हाथ करने की बजाय खड़े होकर स्वेच्छा से लाठी खाते हुए बच्चे, आदि आदि।

आइए थोड़ा और पीछे चलते हैं। वर्ष 1954 में 'जागृति' फिल्म आई थी। उसका एक गाना लोगों की जुबान पर लंबे समय तक चढ़ा रहा और आज भी 15 अगस्त और 26 जनवरी के मौके पर कहीं न कहीं जरूर बजाया जाता है। रामचंद्र नारायणजी द्विवेदी उर्फ प्रदीप के लिखे और मोहम्मद रफी द्वारा गाए गए उस गीत के उस बोल कुछ इस तरह हैं :-

हम लाए हैं तूफान से किश्ती निकाल के/ इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के/
तुम ही भविष्य हो भारत विशाल के/ इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के/

इसी तरह 1961 में 'गंगा जमुना' फिल्म आई। उसका भी शकील बदायुंनी का लिखा हेमंत कुमार का गाया और स्कूल में फिल्माया जाने वाला गीत उतना ही लोकप्रिय हुआ।

इंसाफ की डगर पे बच्चों दिखाओ चल के/ यह देश है तुम्हारा नेता तुम्हीं हो कल के/

यह दोनों गीत युवाओं के भीतर एक भारतीय नागरिक के दायित्वों का बोध पैदा करते हैं। उसे बेबी बूमर(62 से 80 वर्ष) , जेन एक्स(46-61 वर्ष) और मिलेनियल(30 से 45 वर्ष) वाली पीढ़ियां भूल गई थीं, नई पीढ़ी (जेन जी प्लस जेन अल्फा) ने उसे फिर से याद दिला दिया है। जब देश में आए दिन प्रश्न पत्र लीक होने लगे, परीक्षाओं में सुनियोजित धांधली की कलई खुलने लगी, शिक्षा परीक्षा में एक खास विचारधारा थोपने की तैयारी हुई तब भारत की युवा पीढ़ी ने जंतर मंतर से शुरू करके पूरे देश में जो आंदोलन खड़ा किया उसे महज 'डूबते को तिनके का सहारा' नहीं बल्कि डूबती जम्हूरियत के लिए वह खंभा, जंजीर और नौका के सहारे के रूप में प्रकट हुई। लगातार चुनाव जीतने के नाम पर मौजूदा सरकार ने अपने अश्वमेध का जो घोड़ा छोड़ रखा था, उसे युवाओं ने पकड़ कर बांध लिया है। चीन के थियेनआनमन चौक की तरह अभिमन्यु के फिर से मारे जाने की भविष्यवाणी गलत निकली। बकौल रक्षा मंत्री 'एनडीए की सरकार में इस्तीफे नहीं होते' का दावा भी गलत साबित हुआ। इस बार अभिमन्यु जीत गया है। इस जीत की गूंज देश में अत्र-तत्र सर्वत्र व्याप्त हो चुकी है। हासिल जीत को लेकर जिस तरह उत्साह का प्रदर्शन हुआ है उससे तानाशाही और नफरती इरादों के हौसले पस्त तो हुए ही है, युवा पीढ़ी को

पुचकारकर अपने पाले में करने की कोशिशें भी बढ़ गई हैं। हालांकि सवालों से भागती और जवाबदेही के मोर्चे पर बगलें झांकती सरकार सही अर्थों में उसी दिन हार गई थी जब अहिंसक छात्रों पर बर्बर पुलिसिया कार्रवाई का निर्णय लिया। सत्ताधारियों ने करंट लगे डंडे, कील लगी लाठियां और पैलेट गनों से युवाओं का दमन किया लेकिन उसके बाद मधुमक्खियों की तरह से युवाओं और उनके समर्थकों ने सत्ताधारियों को घेर लिया।

इस पीढ़ी ने यह भी जता दिया कि उसे मंदिर-मस्जिद, हिंदू मुस्लिम और प्राचीन भारत के गौरव के नाम पर लंबे समय तक बहकाया और बरगलाया नहीं जा सकता। उसे चैनलों और अखबारों के नफ़रती कार्यक्रम लंबे समय तक घृणा और हिंसा नहीं सिखा सकते। उसे अपना भविष्य सुरक्षित चाहिए न कि आश्वासन और लंबे लंबे भाषण।

जेन जी की निगाह में कोई राजनेता विष्णु भगवान का अवतार नहीं हैं और न ही कोई नेता फिसड्डी या पप्पू। उनकी नजर में कमजोर पड़ चुकी कम्युनिस्ट पार्टियां भी अर्बन नक्सल नहीं हैं। उसने सीपीआई और सीपीएम ही नहीं भूमिगत आंदोलन से निकली और लोकतांत्रिक मुख्यधारा में आ चुकी सीपीआई(एमएल) और उसके संगठन आइसा के बारे में कोई पूर्वाग्रह नहीं पाला है।

ऐसा शायद इसलिए भी हो पाया क्योंकि यह पीढ़ी अमेरिकी क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति, रूसी क्रांति, चीनी क्रांति, ईरान की

इस्लामी क्रांति, अपनी आजादी की लड़ाई और दुनिया में आजकल होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानती है। यह उस पर चर्चा करती है और आजादी उसे पसंद है।

यह भगत सिंह और भीमराव आंबेडकर को पढ़ती है, संविधान सभा की बहसों को पढ़ती है और यह भी जानती है कि तानाशाही के सामने गांधी का तरीका कारगर है। इसलिए उनके असहयोग, सविनय अवज्ञा और अनशन के सत्याग्रही हथियारों का इस्तेमाल करती है।

पर असली सवाल यह है कि युवाओं को यह जीत हासिल कैसे हुई? वैसे तो भारत में मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना की स्थिति है लेकिन जिन दो मतों का यहां उल्लेख आवश्यक है उनमें एक है संघर्ष का सिद्धांत और दूसरा है साजिश का सिद्धांत। इन दोनों सिद्धांतों की अपनी अपनी तर्कप्रणाली है और उसके लिए उनके पास अपने अपने परिस्थितिजन्य साक्ष्य हैं। संघर्ष के सिद्धांत वालों का कहना है कि युवाओं ने संघर्ष किया तो उन्हें जीत हासिल हुई।

उन्होंने अपने आंदोलन को अहिंसक रखा, उसमें तोड़फोड़ वाले तत्वों का प्रवेश नहीं होने दिया, आंदोलन पूरे देश में फैल गया और 20 जुलाई की सरकारी हिंसा के बावजूद उसने धैर्य नहीं खोया। धीरे धीरे किसानों, मजदूरों और समाज की वरिष्ठ पीढ़ी और विपक्ष के साथ–साथ भाजपा के भीतर उनके प्रति सहानुभूति और समर्थन बढ़ने लगा था। इसलिए सरकार को झुकना पड़ा। इस आंदोलन को सोनम वांगचुक के आमरण अनशन से बल मिला और जब उनका अनशन समाप्त हुआ तब भी काकरोच जनता पार्टी ने तय किया कि शिक्षा मंत्री का इस्तीफा लिए बिना यह आंदोलन समाप्त नहीं होगा। यह भी लगा कि अगर सोनम बांगचुक की तरह सरकार के दबाव में काकरोचों ने भी आंदोलन वापस ले लिया तो भी दिल्ली के फुटपाथों पर सो रहे युवा उसे वापस नहीं लेंगे।

लेकिन संघर्ष के सिद्धांत के समांतर साजिश का सिद्धांत भी काफी जोरशोर से उछाला गया । प्रारंभ में भाजपा के लोग आंदोलन को विदेशी शक्तियों द्वारा प्रेरित और सोनम वांगचुक को चीन और पाकिस्तान का एजेंट बता रहे थे। और बार बार कह रहे थे कि विदेशी धन से चलने वाले आंदोलन के आगे शिक्षा मंत्री का इस्तीफा नहीं होगा। लेकिन अब कह रहे हैं कि इस देश के तमाम लोगों को प्रधानमंत्री से राजनीति की दीक्षा लेनी चाहिए। देखो कैसे गुब्बारा फुलाकर उसकी हवा निकाल देते हैं। जैसे किसान आंदोलन की हवा निकाली, वैसे ही काकरोच आंदोलन को फुस्स कर दिया।

कांग्रेसी भी घुमफिर कर इसी निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं। उनका कहना है कि लद्दाख के उपराज्यपाल ने सोनम वांगचुक को तैयार किया अनशन करने के लिए। काकरोच जनता पार्टी की भी सरकार से मिलीभगत थी। वे देख रहे थे कि कांग्रेस पार्टी और राहुल गांधी नीट के पेपर लीक से पैदा हुए आंदोलन को गरमा रहे थे और वह बढ़ रहा था। सरकार चाहती थी कि युवा राहुल के समर्थन में न उतरें और फिर उसे भटकाने और राहुल के नेतृत्व को छोटा करने के लिए सोनम वांगचुक को खड़ा कर दिया। सरकार को लगा था कि वे लोग थोड़े दिन अनशन करके चले जाएंगे। लेकिन जब पानी सर से ऊपर निकलने लगा तो हस्तक्षेप करना पड़ा और शिक्षा मंत्री का इस्तीफा हुआ।

इसे थोड़ा अलग हटकर जिन राज्यों में विधानसभा चुनाव होने हैं वहां के क्षेत्रीय दलों ने वोट के लिहाज से आंदोलन का समर्थन और विरोध किया। वहीं भारतीय राजनीति से लगभग गायब हो चुके वाम दलों ने पीसान (आटा)पोतकर भंडारी बनने की कोशिश अंत तक की।

इतिहास में साजिशें होती हैं। सरकारों के हाथ बहुत लंबे होते हैं और वे लीलाएं भी करती हैं। इसके बावजूद संघर्ष करने वाले लोग उनको दरकिनार करके अपने कर्म पर यकीन करते हैं। शायद गांधी ने यही किया।

समाजशास्त्रीय विवेचन करने वाले लोग इसे पीढ़ी बदलाव के रूप में देख रहे हैं। पुराने दिनों में नारा लगाता था 'जो लड़ेगा वह बचेगा'। इसके बाद के दौर में कहां जाने लगा कि 'जो बचेगा वह रचेगा'। जंतर मंतर पर जुटी जेन जी और जेन अल्फा पीढ़ी ने पुराने को धत्ता बताते हुए जो नया कहा है, यह कि 'जो उल्टा सीधा कुछ भी गढ़ सकेगा, अब आगे वही चलेगा'।

बहरहाल भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। लोकशाही में संघर्ष और साजिश के किस्से भी कम नहीं है। लेकिन सोलह आना सच यही है की जनता सर्वोपरि है। इसलिए भी

जनता की शक्ति और उसके संघर्ष के सिद्धांत में यकीन करें और स्वीकार करें कि सब कुछ के बावजूद जेन–जी में लोकतंत्र जिंदा है।

श्रद्धांजलि

कलरव मासिक पत्रिका के संपादक तड़ित कुमार दादा नहीं रहे। वरिष्ठ पत्रकार, सिद्धहस्त साहित्यकार, कवि, अनुवादक तड़ित दादा की मृत्यु कलरव परिवार के लिए अपूरणीय क्षति है। दादा के इस दुनिया में अब न होने की बुरी खबर ऐसे समय में आई है जब कलरव पत्रिका अपनी यात्रा का 20 वां साल अगले महीने सितंबर में पूरा करने जा रही है। 20 साल पहले 14 सितंबर 2006 को कलरव के प्रकाशन की योजना तड़ित दादा के नेतृत्व में ही तैयार हुई थी। उन्होंने पत्रिका के संपादन का कार्य सहर्ष संभाल तथा अपने साहित्यिक संस्कार से इसे समृद्ध किया। हालांकि बाद के वर्षों में नौकरी की व्यस्तता के कारण उन्होंने अपनी जिम्मेवारी अन्य साथियों को दे दी लेकिन उनका जुड़ाव लगातार बना रहा।

तड़ित दादा का पूरा नाम तड़ित कुमार चट्टोपाध्याय (चटर्जी) था लेकिन जाती पहचान का त्याग करते हुए दादा ने बहुत पहले अपना सरनेम लिखना छोड़ दिया था। दादा मूल रूप से बांग्लादेश चटगांव में पैदा हुए लेकिन उनके पिता रेलवे की नौकरी के लिए गोरखपुर आ गए थे। दादा की शिक्षा दीक्षा गोरखपुर में हुई। दादा ने पत्रकारिता की शुरुआत 1966 में गोरखपुर के एक हिंदी दैनिक अखबार से की थी। बाद मे शान ए सहारा, अक्षर भारत, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण जैसे कई बड़े अखबारों में अपनी सेवाएं दी। तिलचट्टा और बिजूखा जैसा उपन्यास लिखने वाले दादा एक बेहतरीन कवि भी थे। उनकी अनेक कविताएं शुरुआत नमक संकलन में प्रकाशित है।

दिवंगत तड़ित दादा को विनम्र श्रद्धांजलि।

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 6

बागी नहीं बदलाव के वाहक है युवा

मनोज राय

तरुणाई जब चीते की मानिंद जिश्त लगाते हुए कुलांचे भरती है तो उसके जोश के आगे छोटी मोटी शासन सत्ता तो क्या बड़े-बड़े साम्राज्य रास्ता देने को मजबूर होते हैं। जब युवा सड़कों पर उतरता है तो बदलाव की बयार आती है। हाल फिलहाल इसकी बानगी जंतर मंतर पर दिखी, जब देश का युवा अपनी मांगों को लेकर डटकर खड़ा हुआ तो सरकार को झुकना पड़ा। अब कमोबेस ऐसा ही नजारा झारखंड के रांची शहर से देखने को मिल रहा है जहां छात्र अपनी मांगों पर जोश और ईमानदारी के साथ अड़े हुए हैं।

हालिया आंदोलन में छात्रों की ताकत शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है लेकिन इसके समानांतर एक नई बहस भी शुरू हुई है। युवा पीढ़ी की सत्ता से सवाल पूछने की क्षमता की प्रशंसा हो रही है लेकिन लगे हाथों कुछ लोग इस पीढ़ी को अधीर, विद्रोही और यहां तक की गालीबाज पीढ़ी की संज्ञा से नवाजने लगे हैं। क्या ये दोनों नजरिये सही है अथवा अंधों की हाथी वाली बात है?

इतिहास गवाह है की पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को ठीक से समझने में अक्सर भूल करती रही है। हमारे देश में युवाओं की संख्या लगभग 40 करोड़ है। यूनिसेफ का अनुमान है की वर्तमान दशक में इनकी संख्या देश की आधी आबादी से कुछ अधिक की हो जाएगी। यही संख्या आने वाले समय में देश में कार्य बल, नवाचार के साथ-साथ चुनावी राजनीति की दशा और दिशा भी तय करेगी। देश के प्रधानमंत्री और संघ के प्रमुख भी अब इस सच को सार्वजनिक तौर पर स्वीकार करने लगे हैं। संघ प्रमुख ने हाल ही में कहा है कि 'आंदोलन कर रहे छात्र एंटी नेशनल नहीं है, हमें इनकी बातों को ठहर कर समझना चाहिए'। सोचने के तरीके में आया बदलाव इस पीढ़ी की एकजुटता का नतीजा है। आलोचना के पुराने चश्मे उतार कर जिम्मेवार लोग भी मानने लगे हैं की इस पीढ़ी के लिए सोशल मीडिया और तकनीक विलासिता नहीं बल्कि बुनियादी जरूरत है।

तारीख साक्षी है की हर पीढ़ी को प्रारंभ में गलत समझा गया। आजादी के बाद शहर जाने वाले युवाओं पर परंपरा तोड़ने के आरोप लगे। आर्थिक सुधारो के दौर में नई पीढ़ी को अधिक भौतिकवादी कहा गया। संचार क्रांति के दौरान युवाओं को विदेशी सपनों का पिछलग्गू बताया गया। लेकिन समय के साथ हर पीढ़ी ने अपनी सार्थकता सिद्ध की। इसलिए भी हमें आज के डिजिटल दौर की बेबाक जुबान के पीछे छिपी चेतना को कान लगाकर सुनने की जरूरत है।

पेपर लीक विवाद में केंद्रीय शिक्षा मंत्री का इस्तीफा और नंदन नीलकेणी के नेतृत्व में हाई पावर टास्कफोर्स का गठन सरकार के सकारात्मक सोच का संकेत है।

प्रधानमंत्री खुद हर आपदा में अवसर की संभावना छिपे होने की वकालत करते हैं। तो क्या यह माना जाए कि शिक्षा के क्षेत्र में कोई बड़ा बदलाव होने वाला है?

जंतर मंतर पर उभरा गुस्सा केवल एक परीक्षा लीक का मामला नहीं था, यह आक्रोश सालों से लचर, विवादित, दिशाहीन, घून खाए शिक्षा पद्धति के खिलाफ था। शिक्षा मंत्रालय कभी एनसीईआरटी के मुगल चैप्टर के कारण हिंदू मुस्लिम बहस में फंसा तो कभी न्यायपालिका के भ्रष्टाचार वाले पाठ में। विश्वविद्यालय में कुलपतियों की विवादित नियुक्तियां और अकादमिक स्वतंत्रता भी चर्चा में रही। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में जातिगत भेदभाव की बेतुकी परिभाषा तो कभी त्रिभाषा सूत्र पर अनावश्यक राजनीति हावी हुई। कौशल विकास के कार्यक्रम उपयोगिता से ज्यादा लूटकांड के रूप में कुख्यात हुए। एनटीए अपने गठन के बाद से ही विवादों में रहा, रही सही कसर नीट और इस तरह की परीक्षाओं के पेपर लीक ने पूरी कर दी।

आज देश में शिक्षकों की भारी कमी है। 110000 स्कूलों में केवल एक अध्यापक हैं। सरकारी स्कूल लगातार बंद हो रहे हैं। इसके कारण प्राइवेट स्कूल और ट्यूशन माफियाओं का दबदबा बढ़ता जा रहा है। विश्व रैंकिंग में भारत की शिक्षा बहुत नीचे आ चुकी है। शिक्षा विशेषज्ञों का मानना है कि भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बेहतरीन है लेकिन इसके क्रियान्वयन में भारी खामियां हैं। शिक्षा बजट को जीडीपी के छह प्रतिशत तक ले जाने का वादा आज भी अधूरा है।

आंदोलन के बहाने सरकार को अवसर मिला है। नई पीढ़ी ने एहसास कर दिया है कि उसे हिंदू मुस्लिम या पाठ्यक्रम में इतिहास बदलने वाले विवादों से कोई फर्क नहीं पड़ता। युवा पीढ़ी को एक सुरक्षित भविष्य, पारदर्शी परीक्षाएं, अच्छी गुणवत्ता वाले स्कूल और हर हाथ को काम तथा हर काम के उचित दाम चाहिए। सरकार चाहे तो हारकर भी जीत सकती है वरना हम सभी जानते हैं 'जिस ओर जवानी चलती है, उस ओर जमाना चलता है'। ■

युवा शक्ति

इतिहास, राजनीति और परिवर्तन की अनवरत यात्रा

सभ्यता के उदय से स्वतंत्रता-संग्राम तक

अनिल तिवारी

किसी भी राष्ट्र का इतिहास केवल राजाओं, साम्राज्यों अथवा युद्धों का इतिहास नहीं होता, बल्कि वह उन असंख्य युवाओं की अदृश्य पदचापों का भी इतिहास होता है जिन्होंने अपने समय की जड़ताओं को चुनौती देकर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहास के प्रत्येक निर्णायक करवट के पीछे यदि कोई शक्ति सबसे अधिक सक्रिय दिखाई देती है, तो वह युवा शक्ति ही है। युवा केवल आयु का एक चरण नहीं, बल्कि चेतना की वह अवस्था है जिसमें स्वप्न देखने का साहस, अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का आत्मबल तथा भविष्य को वर्तमान से श्रेष्ठ बनाने की आकांक्षा विद्यमान रहती है। इसी कारण प्रत्येक सभ्यता ने अपने भविष्य की परिकल्पना युवाओं के कंधों पर रखी है। जिस समाज के युवाओं में विचार का तेज, कर्म का उत्साह और उत्तरदायित्व का बोध जीवित रहता है, वह समाज समय की कठिनतम परीक्षाओं में भी अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखता है; किन्तु जहाँ युवा दिशाहीन हो जाते हैं, वहाँ सभ्यताएँ वैभव के शिखर पर पहुँचकर भी पतन का मार्ग ग्रहण कर लेती हैं।

भारतीय सभ्यता के विकासक्रम में युवा शक्ति का स्थान अत्यन्त प्राचीन और गौरवपूर्ण रहा है। वैदिक साहित्य में युवावस्था को केवल शारीरिक सामर्थ्य का पर्याय नहीं माना गया, अपितु ज्ञान, तप, संयम तथा राष्ट्रधर्म के समन्वित स्वरूप के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। गुरुकुल व्यवस्था का उद्देश्य केवल शिक्षित

नागरिक तैयार करना नहीं था, बल्कि ऐसे उत्तरदायी व्यक्तित्वों का निर्माण करना था जो समाज, संस्कृति और राष्ट्र के संरक्षण के साथ-साथ उसके विकास का दायित्व भी वहन कर सकें। ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करने वाला विद्यार्थी राजकुमार हो अथवा सामान्य परिवार का बालक, उसे समान अनुशासन, समान श्रम और समान उत्तरदायित्व का अभ्यास कराया जाता था। इस प्रकार भारतीय शिक्षा-दर्शन ने प्रारम्भ से ही युवाओं को सामाजिक परिवर्तन का साधन माना, न कि केवल व्यक्तिगत उन्नति का माध्यम।

महाजनपदों के उदय और गणतांत्रिक परम्पराओं के विकास ने युवाओं की राजनीतिक भूमिका को और अधिक सुदृढ़ किया। वैशाली जैसे गणराज्यों में शासन की अवधारणा केवल राजसत्ता पर आधारित नहीं थी, बल्कि जनभागीदारी के विविध स्वरूपों पर भी निर्भर करती थी। इस लोकतांत्रिक चेतना ने युवाओं के भीतर सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया। यही वह काल था जब तक्षशिला और नालंदा जैसे ज्ञान केंद्र केवल शिक्षा के संस्थान नहीं रहे, बल्कि विचार-विमर्श, दर्शन, राजनीति और कूटनीति के ऐसे केंद्र बने जहाँ से सम्पूर्ण एशिया के लिए बौद्धिक नेतृत्व का निर्माण हुआ। इन विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपने समय के वैचारिक संवाद के सक्रिय सहभागी थे। ज्ञान और युवा ऊर्जा का यह समन्वय भारत की सांस्कृतिक शक्ति का आधार बना।

भारतीय इतिहास में जब-जब वैचारिक क्रांतियाँ हुईं, उनका नेतृत्व भी बड़ी सीमा तक युवाओं ने ही किया। भगवान बुद्ध ने राजवैभव का त्याग अपेक्षाकृत युवा अवस्था में किया और करुणा, विवेक तथा समता पर आधारित एक ऐसे आंदोलन का सूत्रपात किया जिसने सम्पूर्ण एशिया की सांस्कृतिक संरचना को प्रभावित किया। महावीर स्वामी ने भी सांसारिक सुखों का परित्याग कर आत्मानुशासन और अहिंसा की ऐसी साधना प्रस्तुत की जिसने भारतीय चिंतन को नई दिशा दी। इन दोनों महापुरुषों ने यह सिद्ध किया कि युवावस्था केवल संघर्ष का नहीं, बल्कि आत्मपरिवर्तन और सामाजिक पुनर्निर्माण का भी काल है।

मौर्य साम्राज्य के उदय में भी युवा शक्ति का अद्भुत योगदान दृष्टिगोचर होता है। चंद्रगुप्त मौर्य का व्यक्तित्व इस सत्य का प्रमाण है कि यदि युवा संकल्प को योग्य मार्गदर्शन प्राप्त हो जाए तो वह इतिहास की दिशा बदल सकता है। आचार्य चाणक्य के दूरदर्शी नेतृत्व और चंद्रगुप्त की अदम्य ऊर्जा ने उस समय की विखंडित राजनीतिक परिस्थितियों को एक सशक्त राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया। यह केवल एक साम्राज्य की स्थापना नहीं थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता, राजनीतिक संगठन और आत्मनिर्भर शासन की स्थापना का ऐतिहासिक अध्याय था। इसी प्रकार सम्राट अशोक के जीवन में कलिंग युद्ध के पश्चात आया परिवर्तन यह दर्शाता है कि युवा नेतृत्व यदि आत्ममंथन करने का साहस रखता हो, तो वह विजय की राजनीति को मानवता की राजनीति में रूपांतरित कर सकता है।

मध्यकालीन भारत अनेक राजनीतिक संघर्षों और सांस्कृतिक चुनौतियों का काल था। विदेशी आक्रमणों तथा साम्राज्यवादी विस्तार के बीच भारतीय समाज ने अनेक संकटों का सामना किया, किन्तु इसी काल में युवाओं ने अपने साहस और संगठन क्षमता का परिचय भी दिया। महाराणा प्रताप के संघर्ष में युवा सैनिकों का समर्पण, छत्रपति शिवाजी महाराज के स्वराज्य आंदोलन में मावलों की भूमिका तथा सिख परंपरा में गुरु गोबिंद सिंह द्वारा खालसा पंथ की स्थापना, इन सभी घटनाओं ने यह स्पष्ट किया कि राष्ट्र की रक्षा केवल शस्त्रों से नहीं होती, बल्कि युवाओं के चरित्र, अनुशासन और आत्मबल से होती है। इन आंदोलनों ने भारतीय मानस में स्वतंत्रता को केवल राजनीतिक अधिकार नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का प्रतीक बना दिया।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में जब औपनिवेशिक शासन ने भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना को व्यवस्थित रूप से प्रभावित करना आरम्भ किया, तब भारतीय समाज में नवजागरण की चेतना विकसित होने लगी। अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से भारतीय युवाओं का परिचय आधुनिक राजनीतिक विचारों, लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और मानवाधिकार जैसी अवधारणाओं से हुआ। यह शिक्षा औपनिवेशिक शासन की प्रशासनिक आवश्यकता थी, किन्तु धीरे-धीरे वही भारतीय राष्ट्रीय चेतना की वाहक बन गई। शिक्षित युवा अब केवल नौकरी के आकांक्षी नहीं रहे; वे अपने राष्ट्र की दासता को समझने लगे और उसके विरुद्ध वैचारिक प्रतिरोध का निर्माण करने लगे।

सन् 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम भारतीय युवा चेतना का पहला व्यापक विस्फोट था। यद्यपि इसके कारण विविध थे, परन्तु इसके मूल में स्वतंत्रता की वही आकांक्षा थी जिसने सैनिकों, विद्यार्थियों, किसानों और सामान्य युवाओं को एक सूत्र में बाँध दिया। इस संघर्ष ने यह सिद्ध कर दिया कि राजनीतिक परिवर्तन का वास्तविक आधार जनशक्ति होती है, और जनशक्ति का सबसे ऊर्जावान स्वरूप युवा शक्ति है। यद्यपि यह संग्राम तत्कालीन परिस्थितियों में सफल नहीं हो सका, किन्तु इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की वैचारिक नींव रख दी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय नवजागरण ने युवा शक्ति को एक नया बौद्धिक आयाम प्रदान किया। स्वामी विवेकानंद ने युवाओं को केवल राष्ट्र का भविष्य नहीं, बल्कि वर्तमान की सबसे बड़ी शक्ति घोषित किया। उनका आह्वान केवल शारीरिक पराक्रम तक सीमित नहीं था; वे चरित्र, आत्मविश्वास, ज्ञान और सेवा को राष्ट्रनिर्माण का आधार मानते थे। उनके विचारों ने असंख्य युवाओं के भीतर आत्मगौरव का संचार किया। इसी प्रकार दयानंद सरस्वती, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविंद जैसे चिंतकों ने भी युवाओं में राष्ट्रभक्ति, सांस्कृतिक स्वाभिमान और राजनीतिक जागरूकता का भाव उत्पन्न किया। परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारतीय युवा केवल दर्शक नहीं रहे, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे सक्रिय और प्रभावशाली सहभागी बन चुके थे।

यहीं से भारतीय इतिहास के उस स्वर्णिम अध्याय का आरम्भ होता है जिसमें युवा शक्ति केवल परिवर्तन की सहभागी नहीं रही, बल्कि स्वयं परिवर्तन का पर्याय बन गई। आने वाले वर्षों में यही युवा पीढ़ी सत्याग्रह, क्रांतिकारी आंदोलन, छात्र संगठनों, भूमिगत संघर्षों और वैचारिक आंदोलनों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को चुनौती देने वाली थी। भगत सिंह की लेखनी, चंद्रशेखर आज़ाद का साहस, खुदीराम बोस का अदम्य बलिदान, अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ का राष्ट्रप्रेम और असंख्य अनाम युवाओं का त्याग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को ऐसी दिशा देने वाला था जिसने अंततः 1947 में स्वतंत्र भारत के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

स्वतंत्रता-संग्राम से लोकतांत्रिक भारत तक

बीसवीं शताब्दी का आरम्भ भारतीय इतिहास में उस युग का उद्घोष था जिसमें युवा शक्ति ने राष्ट्र की नियति को नया स्वरूप प्रदान किया। यदि उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीय चेतना के जागरण का काल थी, तो बीसवीं शताब्दी उसके सक्रिय रूपांतरण का युग सिद्ध हुई। इस काल का प्रत्येक प्रमुख आंदोलन युवाओं की ऊर्जा, वैचारिक प्रखरता और अदम्य साहस से अनुप्राणित था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक मंच से लेकर भूमिगत क्रांतिकारी संगठनों तक, छात्र आंदोलनों से लेकर जनसभाओं तक, और लेखनी से लेकर रणभूमि तक, हर स्थान पर युवाओं ने यह प्रमाणित किया कि इतिहास की दिशा केवल सत्ता नहीं बदलती, उसे विचार और संकल्प बदलते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का सबसे उल्लेखनीय पक्ष यह था कि उसने युवाओं को केवल संघर्ष का सैनिक नहीं बनाया, बल्कि विचार का निर्माता भी बनाया। इस युग का युवा अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों का गंभीर विश्लेषण करता था। वह स्वतंत्रता को केवल विदेशी शासन से मुक्ति के रूप में नहीं देखता था, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता, वैज्ञानिक चेतना और मानवीय गरिमा की स्थापना से जोड़कर समझता था। यही कारण है कि स्वतंत्रता-संग्राम केवल राजनीतिक अभियान नहीं रहा; वह एक व्यापक राष्ट्रीय पुनर्जागरण का स्वरूप ग्रहण कर गया।

इस युग के सबसे तेजस्वी व्यक्तित्वों में भगत सिंह का स्थान सर्वोपरि है। उन्हें केवल एक क्रांतिकारी के रूप में देखना उनके

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 11

व्यक्तित्व के साथ अन्याय होगा। वे असाधारण अध्ययनशीलता, वैचारिक स्पष्टता और सामाजिक संवेदनशीलता के प्रतीक थे। कार्ल मार्क्स से लेकर लेनिन, रूसो, मेज़िनी, टॉल्स्टॉय और भारतीय चिंतकों तक, उन्होंने विविध विचारधाराओं का गंभीर अध्ययन किया। उनकी दृष्टि में क्रांति का अर्थ अराजक हिंसा नहीं था, बल्कि अन्यायपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं का विवेकपूर्ण परिवर्तन था। उन्होंने युवाओं को भावनात्मक आवेश से ऊपर उठकर बौद्धिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का संदेश दिया। उनका जीवन इस सत्य का उद्घोष है कि विचारों की शक्ति किसी भी साम्राज्य की शक्ति से अधिक स्थायी होती है।

चंद्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ, सुखदेव, राजगुरु, खुदीराम बोस, बटुकेश्वर दत्त और असंख्य युवा क्रांतिकारियों ने अपने जीवन का सर्वोत्तम काल मातृभूमि के नाम समर्पित कर दिया। इनका संघर्ष केवल ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध नहीं था, बल्कि उस मानसिक दासता के विरुद्ध भी था जिसने भारतीय समाज को आत्मविश्वासहीन बना दिया था। इन युवाओं ने अपने बलिदान से राष्ट्र को यह शिक्षा दी कि स्वतंत्रता केवल प्राप्त नहीं की जाती, उसके लिए त्याग, अनुशासन और अदम्य धैर्य की आवश्यकता होती है।

दूसरी ओर महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन में भी युवाओं की भागीदारी अभूतपूर्व रही। हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी विद्यालयों और महाविद्यालयों का बहिष्कार किया, विदेशी वस्त्रों की होली जलाई, सत्याग्रहों में भाग लिया और कारावास स्वीकार किया। इस प्रक्रिया ने भारतीय राजनीति को जनभागीदारी का नया आयाम प्रदान किया। पहली बार देश का युवा स्वयं को केवल किसी प्रांत या समुदाय का सदस्य नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत का नागरिक अनुभव करने लगा। यही राष्ट्रीय एकात्मता स्वतंत्रता-संग्राम की सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारतीय युवाओं के समक्ष संघर्ष का स्वरूप परिवर्तित हो गया। अब चुनौती विदेशी शासन को हटाने की नहीं, बल्कि एक ऐसे लोकतांत्रिक राष्ट्र का निर्माण करने की थी जिसमें समान अवसर, सामाजिक न्याय और संवैधानिक मूल्यों की स्थापना हो सके। संविधान-निर्माण की प्रक्रिया ने भारतीय युवाओं को लोकतंत्र, मौलिक अधिकारों, कर्तव्यों और विधि के शासन की नई समझ प्रदान की। स्वतंत्र भारत में मतदान का सार्वभौमिक अधिकार इस विश्वास का प्रतीक था कि राष्ट्र का भविष्य प्रत्येक नागरिक, विशेषकर युवा पीढ़ी, की सक्रिय भागीदारी से निर्मित होगा।

स्वतंत्रता के पश्चात विश्वविद्यालय केवल शिक्षा के केंद्र नहीं रहे, बल्कि लोकतांत्रिक विमर्श के महत्वपूर्ण मंच बन गए। छात्रसंघों, वाद-विवाद समितियों, साहित्यिक संस्थाओं और सामाजिक संगठनों ने युवाओं को नेतृत्व, संवाद और सार्वजनिक जीवन का प्रशिक्षण दिया। अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत छात्र राजनीति से ही की। इस परंपरा ने भारतीय लोकतंत्र को नई पीढ़ी का नेतृत्व प्रदान किया, यद्यपि समय-समय पर छात्र राजनीति पर अवसरवाद, हिंसा और दलगत हस्तक्षेप के आरोप भी लगते रहे।

साठ और सत्तर के दशक में भारतीय राजनीति अनेक चुनौतियों से गुज़री। आर्थिक विषमताएँ, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार और प्रशासनिक जड़ता ने युवाओं में असंतोष उत्पन्न किया। इसी पृष्ठभूमि में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चलने वाला आंदोलन भारतीय लोकतांत्रिक इतिहास की निर्णायक घटना सिद्ध हुआ। इस आंदोलन का सबसे सशक्त आधार छात्र और युवा थे। उन्होंने सत्ता परिवर्तन को लक्ष्य नहीं, बल्कि राजनीति में नैतिकता, पारदर्शिता और जन उत्तरदायित्व की पुनर्स्थापना को अपना उद्देश्य बनाया। इस आंदोलन ने सिद्ध किया कि लोकतंत्र केवल चुनावों से नहीं चलता; उसे सतत जनजागरण और नागरिक सहभागिता की आवश्यकता होती है।

इसके पश्चात असम आंदोलन, पंजाब के उथल-पुथल भरे वर्ष, मंडल आयोग की अनुशंसाओं को लेकर हुए छात्र आंदोलनों तथा विभिन्न क्षेत्रीय जनआंदोलनों ने भारतीय राजनीति में युवाओं की भूमिका को निरंतर प्रभावशाली बनाए रखा। इन आंदोलनों ने सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व, क्षेत्रीय अस्मिता और समान अवसर जैसे प्रश्नों को राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में स्थापित किया। यद्यपि इन आंदोलनों के स्वरूप और परिणामों पर मतभेद संभव हैं, तथापि यह निर्विवाद है कि उन्होंने लोकतांत्रिक बहस को व्यापक बनाया और भारतीय राजनीति को नई दिशाएँ प्रदान कीं।

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 12

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय युवा जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन उत्पन्न किया। वैश्वीकरण, निजीकरण और सूचना-प्रौद्योगिकी के विस्तार ने रोजगार, शिक्षा, संचार और जीवनशैली के नए अवसर प्रदान किए। युवा अब केवल सरकारी सेवाओं तक सीमित नहीं रहे; उद्यमिता, प्रौद्योगिकी, मीडिया, अनुसंधान, कला और वैश्विक उद्योगों में उनकी भागीदारी तीव्र गति से बढ़ी। इसके साथ ही राजनीतिक चेतना का स्वरूप भी बदला। आर्थिक विकास, कौशल, नवाचार और वैश्विक प्रतिस्पर्धा जैसे विषय राजनीतिक विमर्श का महत्वपूर्ण भाग बनने लगे।

इसी काल में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और बाद में इंटरनेट ने लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति को नई गति दी। समाचार-पत्रों और सभाओं तक सीमित राजनीतिक संवाद अब टेलीविजन, वेबसाइटों और डिजिटल मंचों तक पहुँचने लगा। युवा वर्ग विचारों के आदान-प्रदान, जनमत निर्माण और सार्वजनिक विमर्श में पहले से कहीं अधिक सक्रिय हो गया। लोकतंत्र का संवाद अब केवल संसद या विधानसभाओं तक सीमित नहीं रहा; वह विश्वविद्यालयों, सामाजिक संगठनों और डिजिटल मंचों तक विस्तृत हो गया।

किन्तु इसी परिवर्तनशील काल ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी उपस्थित किया कि क्या केवल सूचना की उपलब्धता राजनीतिक परिपक्वता का प्रमाण है? उत्तर स्पष्टतः नहीं है। सूचना यदि विवेक, अध्ययन और आलोचनात्मक दृष्टि से न जुड़ी हो, तो वह भ्रम का कारण भी बन सकती है। इसलिए स्वतंत्र भारत के लोकतांत्रिक विकास ने युवाओं के सामने यह दायित्व भी रखा कि वे अधिकारों के साथ कर्तव्यों, अभिव्यक्ति के साथ उत्तरदायित्व और असहमति के साथ संवैधानिक मर्यादा का संतुलन बनाए रखें।

इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक पहुँचते-पहुँचते भारतीय राजनीति में एक नई पीढ़ी का उदय हो चुका था। यह पीढ़ी डिजिटल तकनीक से परिचित थी, वैश्विक घटनाओं से जुड़ी हुई थी और अपने विचारों को तुरंत व्यक्त करने की क्षमता रखती थी। यही पीढ़ी आगे चलकर जेन जी के रूप में भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलनों और सार्वजनिक जीवन की नई दिशा निर्धारित करने वाली थी। उसकी राजनीतिक चेतना पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर डिजिटल संवाद, नागरिक सहभागिता, पर्यावरण, लैंगिक समानता, तकनीकी नवाचार और वैश्विक उत्तरदायित्व जैसे विषयों को भी अपने विमर्श में सम्मिलित करने लगी।

इक्कीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रवेश करते ही भारतीय युवा शक्ति ने एक ऐसे ऐतिहासिक मोड़ पर स्वयं को खड़ा पाया जहाँ परंपरा और आधुनिकता, राष्ट्रवाद और वैश्विक नागरिकता, तकनीकी प्रगति और मानवीय संवेदनाएँ, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व एक साथ उपस्थित हैं। यह वह समय है जब युवा केवल इतिहास का पाठक नहीं, बल्कि इतिहास का तात्कालिक निर्माता भी है। उसकी एक टिप्पणी, एक शोध, एक सामाजिक अभियान, एक नवाचार अथवा एक जनआंदोलन कुछ ही क्षणों में लाखों लोगों तक पहुँच सकता है। यही वह परिवेश है जिसमें जेन जी भारतीय लोकतंत्र की नई पहचान के रूप में उभर रही है।

जेनरेशन जी वह पीढ़ी है जिसका जन्म डिजिटल युग में हुआ, जिसने इंटरनेट को सुविधा नहीं, बल्कि जीवन के स्वाभाविक अंग के रूप में देखा और जिसने सूचना की गति को समय का सबसे बड़ा संसाधन बना दिया। यह पीढ़ी पुस्तकों के साथ-साथ डिजिटल अभिलेखागार, शोधपत्रों, पॉडकास्ट, वेबिनार और सामाजिक माध्यमों से भी ज्ञान अर्जित करती है। इसकी राजनीतिक चेतना पारंपरिक सीमाओं से भिन्न है। यह केवल चुनावी घोषणाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि नीति-निर्माण, पर्यावरण संरक्षण, लैंगिक समानता, मानसिक स्वास्थ्य, रोजगार, तकनीकी नवाचार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल अधिकार और सतत विकास जैसे विषयों पर भी समान गंभीरता से विचार करती है। इस दृष्टि से भारतीय लोकतंत्र का वर्तमान स्वरूप युवाओं की बदलती प्राथमिकताओं का दर्पण बन चुका है।

जेनरेशन जी वह पीढ़ी है जिसका जन्म डिजिटल युग में हुआ, जिसने इंटरनेट को सुविधा नहीं, बल्कि जीवन के स्वाभाविक अंग के रूप में देखा और जिसने सूचना की गति को समय का सबसे बड़ा संसाधन बना दिया। यह पीढ़ी पुस्तकों के साथ-साथ डिजिटल अभिलेखागार, शोधपत्रों, पॉडकास्ट, वेबिनार और सामाजिक माध्यमों से भी ज्ञान अर्जित करती है।

आज का युवा सत्ता को केवल स्वीकार नहीं करता, बल्कि उससे प्रश्न भी करता है। वह नीतियों का विश्लेषण करता है, आँकड़ों का अध्ययन करता है और सार्वजनिक विमर्श में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करता है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र की स्वस्थ परंपरा का संकेत है, क्योंकि किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की वास्तविक शक्ति जागरूक नागरिकों में निहित होती है। तथापि प्रश्न पूछने की यह संस्कृति तभी सार्थक सिद्ध होती है जब उसके साथ तथ्यपरकता, तर्कशीलता और संवैधानिक मर्यादा भी जुड़ी हो। यदि विचारधारा विवेक पर हावी हो जाए अथवा सूचना की जगह दुष्प्रचार ले ले, तो लोकतांत्रिक संवाद दुर्बल होने लगता है। इसलिए जेन जेन के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल सूचना प्राप्त करना नहीं, बल्कि सत्य और असत्य के मध्य विवेकपूर्ण अंतर स्थापित करना है।

सामाजिक माध्यमों ने युवाओं को अभूतपूर्व अभिव्यक्ति प्रदान की है। आज किसी सामाजिक समस्या, प्रशासनिक त्रुटि, पर्यावरणीय संकट या जनहित के प्रश्न को कुछ ही घंटों में राष्ट्रीय विमर्श का विषय

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 13

बनाया जा सकता है। अनेक जनहित अभियानों में युवाओं की डिजिटल सक्रियता ने सकारात्मक परिवर्तन भी उत्पन्न किए हैं। रक्तदान, आपदा राहत, पुस्तक अभियान, पर्यावरण संरक्षण, महिला सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में डिजिटल माध्यमों ने नागरिक सहभागिता को सशक्त बनाया है। दूसरी ओर यही मंच कभी-कभी भ्रामक सूचनाओं, वैचारिक ध्रुवीकरण, घृणास्पद भाषण और त्वरित प्रतिक्रियाओं का माध्यम भी बन जाते हैं। इसलिए तकनीक स्वयं न तो कल्याणकारी है और न ही विनाशकारी; उसका स्वरूप उसके उपयोगकर्ता के विवेक से निर्धारित होता है।

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति उसकी युवा जनसंख्या है। विश्व के सबसे युवा देशों में सम्मिलित भारत के लिए यह जनसांख्यिकीय स्थिति एक ऐतिहासिक अवसर है। यदि इस युवा शक्ति को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कौशल विकास, अनुसंधान, नवाचार, उद्यमिता और समान अवसर प्राप्त हों, तो भारत न केवल आर्थिक महाशक्ति बन सकता है, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षेत्र में भी वैश्विक नेतृत्व स्थापित कर सकता है। इसके विपरीत यदि यही युवा शक्ति बेरोज़गारी, अशिक्षा, असमानता और सामाजिक विभाजन से ग्रस्त हो जाए, तो यही जनसंख्या राष्ट्र के लिए चुनौती भी बन सकती है। अतः युवा नीति का प्रश्न केवल रोजगार का प्रश्न नहीं, बल्कि राष्ट्र के दीर्घकालिक भविष्य का प्रश्न है।

भारत की हजारों वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा यही संदेश देती है कि समय बदलता है, शासन बदलते हैं, विचारधाराएँ बदलती हैं, किंतु राष्ट्र का पुनर्जागरण सदैव उसकी युवा शक्ति के माध्यम से ही संभव होता है।

राजनीतिक दृष्टि से भी भारतीय युवाओं की भूमिका निरंतर विस्तृत हो रही है। पंचायतों से लेकर संसद तक, प्रशासन से लेकर नीति-निर्माण तक, नागरिक अभियानों से लेकर सामाजिक उद्यमों तक, युवाओं की सहभागिता नए आयाम ग्रहण कर रही है। अनेक युवा आज चुनावी राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं, जबकि अनेक अन्य सामाजिक संगठनों, स्टार्टअप, शोध संस्थानों और जनसेवी अभियानों के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण में योगदान दे रहे हैं। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि लोकतंत्र केवल मतदाता बनने तक सीमित नहीं है; वह सक्रिय नागरिक बनने की प्रक्रिया है।

वर्तमान समय कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव-प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष अनुसंधान और डिजिटल अर्थव्यवस्था का युग है। आने वाले वर्षों में अनेक पारंपरिक व्यवसाय बदलेंगे, नई कार्य संस्कृतियाँ विकसित होंगी और ज्ञान की परिभाषा भी परिवर्तित होगी। ऐसे समय में भारतीय युवा के लिए केवल डिग्री पर्याप्त नहीं होगी; उसे निरंतर सीखने, बदलती परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को विकसित करने तथा मानवीय मूल्यों को तकनीकी प्रगति के साथ संतुलित रखने की क्षमता विकसित करनी होगी। यही क्षमता उसे भविष्य का नेतृत्व प्रदान करेगी।

वर्ष 2047 में जब भारत अपनी स्वतंत्रता के सौ वर्ष पूर्ण करेगा, तब उस भारत की दिशा आज की युवा पीढ़ी के निर्णयों से निर्धारित होगी। यदि वर्तमान युवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण, संवैधानिक मूल्यों, सामाजिक समरसता, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और नैतिक नेतृत्व को अपनाता है, तो विकसित भारत का स्वप्न केवल राजनीतिक नारा नहीं रहेगा, बल्कि राष्ट्रीय यथार्थ बन सकेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि युवा केवल अधिकारों की अपेक्षा न करे, बल्कि कर्तव्यों का भी ईमानदारी से निर्वहन करे; केवल आलोचना न करे, बल्कि समाधान प्रस्तुत करने की क्षमता भी विकसित करे; केवल परिवर्तन की माँग न करे, बल्कि स्वयं परिवर्तन का माध्यम भी बने।

भारतीय इतिहास का प्रत्येक स्वर्णिम अध्याय इस तथ्य का साक्षी है कि जब-जब युवाओं ने अपने निजी हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित को वरीयता दी, तब-तब भारत ने नए युग का स्वागत किया। चाहे वह वैदिक युग का ज्ञान हो, मौर्यकाल का राजनीतिक संगठन, भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक चेतना, स्वतंत्रता-संग्राम का अदम्य बलिदान अथवा लोकतंत्र की सतत यात्रा, प्रत्येक युग में युवा शक्ति ने इतिहास को नई दिशा प्रदान की है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत का इतिहास वस्तुतः उसकी युवा चेतना का ही इतिहास है।

आज आवश्यकता केवल ऊर्जावान युवाओं की नहीं, बल्कि विवेकवान युवाओं की है; केवल तकनीकी दक्षता की नहीं, बल्कि नैतिक दृढ़ता की है; केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की नहीं, बल्कि उत्तरदायित्वपूर्ण अभिव्यक्ति की है। वही युवा राष्ट्र का वास्तविक पथप्रदर्शक बन सकता है जो विचार में उदार, चरित्र में दृढ़, कर्म में अनुशासित और दृष्टि में दूरदर्शी हो। ऐसी युवा शक्ति ही लोकतंत्र को जीवंत रख सकती है, समाज को समरस बना सकती है और राष्ट्र को विश्वमंच पर सम्मानपूर्वक स्थापित कर सकती है।

अंततः युवा शक्ति किसी राष्ट्र की जनसंख्या का मात्र एक आयु-वर्ग नहीं होती; वह उसकी सामूहिक चेतना, रचनात्मक ऊर्जा और भविष्य की संभावनाओं का सजीव प्रतीक होती है। भारत की हजारों वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा यही संदेश देती है कि समय बदलता है, शासन बदलते हैं, विचारधाराएँ बदलती हैं, किंतु राष्ट्र का पुनर्जागरण सदैव उसकी युवा शक्ति के माध्यम से ही संभव होता है। यदि भारत का युवा अपने ज्ञान को विवेक से, अपनी शक्ति को सेवा से और अपनी आकांक्षाओं को राष्ट्रहित से जोड़ दे, तो इक्कीसवीं शताब्दी निश्चय ही भारत की शताब्दी सिद्ध होगी। तब इतिहास यह लिखेगा कि जिस पीढ़ी को संसार ने जेन जी कहा, उसी पीढ़ी ने भारत को आत्मविश्वास, नवाचार, लोकतांत्रिक परिपक्वता और वैश्विक नेतृत्व के नए शिखर तक पहुँचाया। ■

सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने शुरू हो गए.....

उत्तर प्रदेश के छात्रों का फीस वृद्धि विरोधी आन्दोलन (1947)

गौरी तिवारी

15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता की घोषणा होने के ठीक पहले उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द ने प्रदेश के सभी स्कूल और कालेजों के छात्रों की फीस को दोगुना बढ़ाने का ऐलान कर दिया। प्रदेश का छात्र समुदाय और उनके अभिभावक शिक्षा मन्त्री की घोषणा से सकते में आ गये। अनुनय-विनय से छात्रों ने बढ़ी हुई फीस को घटाने का प्रयास प्रारम्भ किया। सरकार से छात्र नेताओं के प्रतिनिधि मण्डल मिले। शान्तिपूर्ण हड़ताल प्रारम्भ हुई। जुलूस निकले, उग्र हुए, गोली चली, लाठी चार्ज हुआ और एक महीने तक प्रदेश का एक भी जिला ऐसा न बचा; जो आन्दोलन से अप्रभावित रह गया हो। स्वतन्त्र भारत में छात्र आन्दोलन की शुरुआत उत्तर प्रदेश में फीस वृद्धि को लेकर हुई।

प्रान्तीय छात्र कांग्रेस के अध्यक्ष अनन्तदेव शर्मा और महामन्त्री कृष्णदेव त्रिपाठी के नेतृत्व में आगरा और कानपुर के छात्र नेताओं का प्रतिनिधिमण्डल 4 अगस्त, 1947 को शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द से फीस बढ़ाने के कारण उत्पन्न कठिनाइयों से अवगत कराने के सम्बन्ध में मिला। प्रतिनिधि मण्डल ने उन्हें अभिभावकों तथा उन विद्यार्थियों की दिक्कतें बतायीं, जो मामूली आय से अपनी पढ़ाई करते हैं।

शिक्षा मन्त्री ने विद्यार्थियों तथा अभिभावकों की कठिनाइयों को समझते हुए कहा कि “अध्यापकों की वेतन-वृद्धि के लिए फीस बढ़ाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। अभी वर्तमान काल में सभी बातें अनिश्चित दशा में हैं, पर यदि भविष्य में सरकारी आय में कुछ वृद्धि हुई, तो सरकार फीस घटाने के प्रश्न पर विचार करेगी।” शिक्षा मन्त्री ने यह भी आशा प्रकट की कि “विद्यार्थियों से स्कूल-कालेजों में चन्दे या अन्य अनधिकार रूप से जो रकमें ली जाती हैं, उन्हें बन्द करने की तजवीजें सरकार के पास आनेवाली हैं और उनसे विद्यार्थियों और अभिभावकों की कठिनाइयाँ कुछ हद तक दूर हो जायेंगी।”

तत्समय भारत-पाक विभाजन के फलस्वरूप देशपर्यन्त प्रारम्भ हुए साम्प्रदायिक दंगों के कारण छात्र नेताओं ने फीस बढ़ोत्तरी के सम्बन्ध में तत्काल कोई आन्दोलन न प्रारम्भ कर शिक्षा मन्त्री से सहानुभूतिपूर्वक इस प्रश्न पर विचार करने को कहा।

13 और 14 सितम्बर, 1947 को फीस बढ़ोत्तरी के मुद्दे को लेकर गोरखपुर में उत्तर प्रदेश विद्यार्थी कांग्रेस का सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ “यदि आगामी दस दिनों के अन्दर उत्तर प्रदेश सरकार ने स्कूल-कालेज की बढ़ाई गयी फीस वापस न की तो छात्र समुदाय राज्यस्तरीय आन्दोलन प्रारम्भ करने को विवश होगा।” 24 सितम्बर, 1947 से छात्रों ने अनिश्चितकालीन हड़ताल पर जाने का निश्चय किया। 21-सदस्यीय 'उत्तर प्रदेशीय छात्र संघर्ष समिति' के गठन की घोषणा की गयी। यह भी निश्चय किया गया कि आन्दोलन की सीधी कार्यवाही प्रारम्भ करने के पहले संघर्ष समिति प्रदेश के शिक्षा मन्त्री से मिलकर बढ़ी हुई फीस घटाने का अनुरोध करेगी।

23 सितम्बर, 1947 को अखिल भारतीय छात्र कांग्रेस के नेतृत्व में प्रदेश छात्र संघर्ष समिति के छात्र नेता शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द से मिले। प्रतिनिधिमण्डल से हुई बातचीत का जो विवरण शिक्षा मन्त्री ने समाचारपत्रों में जारी किया वह इस प्रकार है- “विद्यार्थियों ने आज तीसरे पहर मुझसे मुलाकात की और विद्यार्थियों की फीस बढ़ाये जाने के आन्दोलन के सम्बन्ध में बातें कीं। उन्होंने मुझसे कहा कि छात्र कांग्रेस ने सदा राष्ट्रीय कार्यों में प्रमुख भाग लिया है और उसका इरादा यह नहीं है कि वह कोई ऐसा कार्य करे, जिससे सरकार की परेशानियाँ बढ़ें। पर छात्र कांग्रेस ने फीस (शुल्क) बढ़ाये जाने के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन का समर्थन किया है, क्योंकि उसका विश्वास है कि फीस इतनी अधिक बढ़ा दी गयी है कि मध्यम श्रेणी का परिवार उस बोझ को सहन नहीं कर सकता।

मैंने उन्हें समझाया कि किन कारणों से सरकार फीस बढ़ाने के लिए मजबूर हुई है। मैंने उन्हें अपना वादा याद दिलाया कि प्रान्त की आर्थिक स्थिति सुधरते ही मैं उसमें संशोधन कर दूँगा। मुझे विश्वास है कि छात्र कांग्रेस अपनी राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार काम करेगी और प्रत्यक्ष आन्दोलन करने का ख्याल न करेगी, और ऐसा कोई काम न करेगी जिससे उसके स्वार्थों को क्षति पहुँचे और सरकार की कठिनाइयाँ बढ़ें।”

शिक्षा मन्त्री के वक्तव्य से छात्र-समुदाय को बड़ी निराशा हुई। 24 सितम्बर, 1947 को अखिल भारतीय छात्र कांग्रेस के नेताओं और उत्तर प्रदेश छात्र संघर्ष समिति के निर्देशानुसार लखनऊ, गोरखपुर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, आगरा, मेरठ, सहारनपुर तथा अन्य शहरों और जिलों में फीस वृद्धि के विरुद्ध छात्रों ने

कक्षाओं का बहिष्कार किया। शिक्षा परिसर के अन्दर सभाएँ की गयीं और बढ़ी फीस समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पारित किये। लगभग सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश की शिक्षण संस्थाओं में हड़ताल शान्तिपूर्ण और सफल रही। किन्तु गोरखपुर के स्थानीय विद्यार्थियों के जोश तथा पुलिस की नासमझ-सावधानी के कारण 24 सितम्बर को ही वहाँ लाठी और गोली वर्षा हुई। 25 सितम्बर, 1947 को लखनऊ विश्वविद्यालय और स्थानीय कालेजों में छात्र संघर्ष समिति के आवाहन के अनुसार पूरी हड़ताल हुई। धीरे-धीरे आंदोलन में हिंसक झड़पे पर भी होने लगी।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी की गयी आधिकारिक विज्ञप्ति में कहा गया कि "कुछ विद्यार्थियों ने अपने प्रतिनिधित्व और लोकमत की उपेक्षा करते हुए फीस बढ़ाये जाने के विरुद्ध प्रत्यक्ष आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। उन्हें उन लोगों ने गुमराह किया जो अब या तो विद्यार्थी नहीं हैं या जो यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी हैं और जिन पर फीस बढ़ाये जाने का कुछ भी असर नहीं पड़ा है। वे हाईस्कूलों और इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों को अपने राजनीतिक खेल में मोहरों की तरह काम में लाये। उनके आन्दोलन से हड़तालियों और उन विद्यार्थियों में संघर्ष हो गया जो शान्तिपूर्वक पठन-पाठन जारी रखना चाहते हैं। सरकार को आशा है कि माता-पिता या अभिभावक लोग अपने लड़कों को गैर जिम्मेदार लोगों के प्रभाव से अलग रखेंगे।"

लेकिन गोरखपुर में पुलिस द्वारा छात्रों पर चलायी गयी गोलियों और लखनऊ में विधान भवन के सामने किये गये लाठी चार्ज की प्रतिक्रिया में तथा फीस वृद्धि के विरुद्ध उत्तर प्रदेश छात्र संघर्ष समिति के आवाहन के अनुसार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों और समस्त स्कूल-कालेजों के छात्र हड़ताल पर चले गये। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के पाँच वर्षों बाद उसी पैमाने पर उत्तर प्रदेश में इतनी व्यापक और सफल छात्र हड़ताल फीस वृद्धि के प्रश्न को लेकर हुई।

इलाहाबाद में फीस वृद्धि आंदोलन जोर-जोर से आगे बढ़ा। विश्वविद्यालय छात्र संघ के सभी पुराने पदाधिकारियो ने भी आंदोलन में हिस्सा लिया।

कानपुर के 10,000 से अधिक छात्रों ने फीस वृद्धि के विरुद्ध अनिश्चितकालीन हड़ताल प्रारम्भ कर दी। आंदोलन की आग जल्दी ही आगरा मेरठ बनारस से लेकर देहरादून तक फैल गई।

पुलिस ने लखनऊ में छात्रों के शांतिपूर्ण आंदोलन पर बार-बार लाठी चार्ज किया।

लखनऊ काण्ड के विरोध में पटना विश्वविद्यालय में बिहार प्रान्त की समस्त विद्यार्थी संस्थाओं के प्रतिनिधियों की बैठक में उत्तर प्रदेश के विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति और समर्थन का प्रस्ताव पास हुआ।

लखनऊ में आंदोलन की आज काम करने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव लखनऊ विश्वविद्यालय के वी० सी० बनाए गए।

शिक्षा मन्त्री ने बयान जारी कर कहा कि अध्यापकों के वेतन बढ़ाने में लगभग 30 लाख रुपये के खर्च का अनुमान है जो फीस वृद्धि के बिना संभव नहीं है।

शिक्षा मन्त्री के सार्वजनिक वक्तव्य पर अखबारों ने टिप्पणी करते हुए लिखा पर "क्या कल के देशभक्त आज गुण्डे हो गये ?" "जो विद्यार्थी 1942 के विद्रोह में सबसे आगे थे और जिनके बलिदानों ने ही कांग्रेसी मन्त्रियों को आज कुर्सी पर पहुँचाया है, उन्हें ये मन्त्री ही 'गुण्डा' और उपद्रवी कहें यह ठीक नहीं है।

विद्यार्थियों ने सभी वैधानिक उपायों से फीस घटवाने के प्रयत्न किये। सरकार से वे गिड़गिड़ाये, पंत जी से हाथ जोड़े; पर सब निष्फल।"

41 करोड़ के बजट में 25 लाख की छोटी रकम के पीछे सरकार को लाले पड़े हैं। 25 लाख खर्च करके धारा सभा (विधान सभा) का अधिवेशन नैनीताल में किया जा सकता है, पर अध्यापकों का वेतन बिना फीस बढ़ाये पूरा नहीं किया जा सकता ?" "हैलट के जमाने की रेल-रोड योजना पर 1 करोड़ 43 लाख खर्च किया जा सकता है, पर बिना फीस बढ़ाये अध्यापकों का वेतन नहीं दिया जा सकता ?"

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के विद्वान् वाइस चान्सलर डॉ० राधाकृष्णन (जो आगे चलकर भारत के उपराष्ट्रपति और उसके बाद राष्ट्रपति निर्वाचित हुए) ने आचार्य नरेंद्र देव को मध्यस्थ बनाने की बात कही।

राधाकृष्णन के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द ने कहा कि- "मुझे आश्चर्य है कि राधाकृष्णन ऐसे उत्तरदायी व्यक्ति छात्रों और सरकार के बीच समझौते की सलाह किस प्रकार देते हैं। समझौते की वार्ता दो बराबर के दलों में ही चलती है। अतः मन्त्रिमण्डल ने निश्चय कर लिया है कि वह इस विषय में छात्रों से किसी भी प्रकार समझौते की बात नहीं करना चाहता।

शिक्षा मंत्री के वक्तव्य से सभी राजनीतिक दलों को चिंता हुई। आखिरकार आचार्य नरेंद्र देव ने मध्यस्थता स्वीकार करते हुए छात्रों से आंदोलन वापस लेने की अपील की। उन्होंने कहा कि"विद्यार्थियों में हड़ताल की मनोवृत्ति भूतकाल की विरासत है।

लेकिन वर्तमान में देश का अमन-कानून खतरे में है। कटु साम्प्रदायिक भावना पैदा हो गयी है। मैं ईमानदारी के साथ छात्रों से अपील करता हूँ कि वे अपनी हड़ताल बिना शर्त तत्काल समाप्त कर दें। सरकार बाद में उचित अवसर पर फीस बढ़ाने के प्रश्न पर विचार करेगी और छात्रों की आर्थिक कठिनाई दूर करने की कोशिश करेगी। मैं सरकार से प्रार्थना करूँगा कि बन्दी छात्र नेताओं को जेल में विचार-विनिमय करने का अवसर दिया जाय ताकि वे आवश्यक निर्णय कर सकें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ज्योंही हड़ताल समाप्त हो जायगी, सरकार बन्दी छात्र नेताओं को मुक्त कर देगी और उनके खिलाफ जो भी कार्रवाई का आदेश दिया गया है वे रद्द कर दिये जायेंगे।"12 अक्टूबर, 1947 को छात्रों ने हड़ताल समाप्त करने की घोषणा की।

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 16

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन

विनय जयहिंद

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन मूलतः मध्यम और गरीब वर्ग के परिवारों से शिक्षा ग्रहण करनेवाले छात्रों का आन्दोलन था। यह संघर्ष उन न्यस्त स्वार्थों वाले शासक वर्ग के विरुद्ध था जिन्होंने हिन्दी या भारतीय भाषाओं को कभी पनपने नहीं दिया और जिनके अंग्रेजी-परस्त संरक्षण में पब्लिक स्कूलों, अंग्रेजी माध्यम के बड़े-बड़े कालेजों तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं की पौधशाला में नये लड़कों की फसल तैयार की जा रही थी। यह आन्दोलन शताब्दियों से वंचित किये जानेवाले लोगों का एक महान् और नैतिक आन्दोलन था।

केवल भाषा के प्रश्न पर विशाल हिन्दी प्रदेश के छात्र सड़कों पर नहीं आ गये थे। वे आये थे अपने अन्धकारपूर्ण भविष्य को प्रकाशित करने के लिए। वे आये थे भारतीय संविधान और प्रजातंत्र की उन व्यवस्थाओं की रक्षा के लिए, जिनको आधार बनाकर इस देश में 20 वर्षों तक विकास और सुख- समृद्धि की कल्पना की गयी थी।

छात्रों के आन्दोलन के पीछे सोच यह थी कि भाषा का सवाल राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक विकास के बाद का सवाल नहीं है। भाषा प्राथमिक प्रश्न है, आर्थिक या अन्य विकास इसके बाद आते हैं। विदेशी भाषा में सोचने का कुफल देश भोग रहा था। मंत्र गलत होने से पूजा गलत हो गयी थी और फल प्राप्त नहीं हुआ। गैर-हिन्दी क्षेत्र के लोगों की सुविधा के लिए अंग्रेजी को देश ने 20 वर्षों का अवसर दिया। जिस विकास और पारस्परिक सम्बन्धों के नाम पर हिन्दी को प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया था, वह 20 वर्षों में कहीं दिखायी नहीं पड़ रहा था। निहित स्वार्थी तत्त्वों एवं राजनीतिक दलों ने भाषा-भेद को और भाषा के नाम पर पारस्परिक कटुता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में ही अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के महत्त्व का आकलन किया जा सकता है। आन्दोलन के दौरान यदा-कदा सड़कों पर भीड़ अनियन्त्रित हो गयी थी, लेकिन भीड़ जहाँ होती है; वहाँ नियन्त्रण के बाद भी थोड़ा अनियन्त्रण हो जाता है। इस पूरे आन्दोलन के दौरान उल्लेखनीय बात यह रही कि आन्दोलनकारियों ने दो-चार अवसरों को छोड़कर कभी भी अविचारपूर्ण कार्य नहीं किये। उन्होंने इस संबंध में सावधानी बरती कि उनका आन्दोलन दक्षिण में चले भाषा आन्दोलन से अलग दिखायी पड़े और वह हर माने में औचित्य की सीमा में रहे। दक्षिण में 'राक्षस रूपा हिन्दी' के पुतले जलाये गये और शेष भारत में 'देवी रूपा तमिल' के सम्मान और उसकी स्थापना की लड़ाई लड़ी गयी।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन की आधार-नीति मात्र यह नहीं थी कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले। हिन्दी के समान इस देश की और सभी भाषाएँ अंग्रेजी की दासता से मुक्त हों और फले-फूलें, यह आन्दोलनकारियों की कामना थी। मन्तव्य यह था कि यदि सभी भाषाएँ यह आवश्यक समझें कि आपस में वार्तालाप विकसित करने के लिए उन्हें कोई एक भाषा चाहिए तो हिन्दी की सेवाएँ उनके लिए उपलब्ध रहेंगी।

कुछ लोगों को इस आन्दोलन में अराजकता की बू आ रही थी। लेकिन उन्हें यह याद रखना चाहिए कि परिवर्तन जब आता है, तो एक बार चीजें उलट-पुलट होती हैं अवश्य। महात्मा गांधी ने हिन्दी पर विचार करते हुए कभी ऐसे ही शंकालु लोगों के लिए कहा था कि "यदि अंग्रेजी और अराजकता के बीच मुझे चुनाव करना

पड़े तो मैं अराजकता को ही पसन्द करूँगा।"

आन्दोलन का अपना एक ढंग होता है और वह अपनी भाषा और कार्यपद्धति स्वयं विकसित करता है। इस नवीन भाषा आन्दोलन ने भी अपना एक प्रतीक विकसित किया और वह था रास्तों के किनारे लगे विज्ञापन पट्टों, घरों के नामपट्टों आदि से अंग्रेजी हटाना। छात्र सार्वजनिक स्थान पर ऐसी कोई चीज नहीं देखना चाहते थे जो अंग्रेजी की प्रतीक हो। वे गुलामी और शोषण के इन अवशेषों को मिटाने में पूर्णतया सफल भी रहे। जो कार्य कई राजनैतिक दल और हिन्दी के नाम बनी संस्थाएँ नहीं कर सकीं, वह छात्रों ने कर दिखाया।

छात्रों के आन्दोलन की दूसरी उपलब्धि यह रही कि अंग्रेजी के विरुद्ध 'व्यापक जनभावना' पैदा हुई। सामान्य लोगों के मन से यह भ्रम दूर हुआ कि अंग्रेजी के बिना प्रशासन का कार्य या शिक्षण-कार्य नहीं चल सकता। आन्दोलन के दौरान थोड़ी-बहुत जन सम्पत्ति का नुकसान हुआ लेकिन इस संघर्ष से एक बहुत बड़े परिवर्तन की सूचना मिली, जिसका बहुत अधिक महत्त्व है। वर्षों पहले जो काम पूरा हो जाना चाहिए था, उसे एक संकेत से इन आन्दोलनकारियों ने पूरा कर लिया और इसी माध्यम से मानो भविष्य के संकेत भी स्पष्ट कर दिये।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन इस दृष्टि से भी सफल माना जायगा कि केन्द्रीय लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी तथा मान्य क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम के रूप में प्रयोग करने की नीति की घोषणा हुई तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रचलन स्वीकार किया गया।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के दौरान छात्र अपने आन्दोलन में काफी हद तक अकेले रहे। हिन्दी के नामधारी साहित्यकारों तथा हिन्दी के माध्यम से जीविकोपार्जन करनेवालों ने अधिकांशतः अपने को प्रस्तावों और वक्तव्यों तक ही सीमित रखा। कुछ साहित्यकारों ने अपनी उपाधियाँ वापस करके आन्दोलन को नैतिक बल दिया पर साहित्यकार वर्ग को और अधिक सक्रिय रूप से सामने आना चाहिए था।

छात्र आन्दोलन के माध्यम से एक बात स्पष्ट हुई कि भाषा का सवाल असल में मात्र शिक्षा- जगत् से सम्बन्धित सवाल नहीं है, वह है राज्य-व्यवस्था का और सार्वजनिक जीवन का। उसका हल वहीं पर खोजना होगा। अगर राज्यों में सारा राजकाज प्रजा की भाषा में याने प्रान्तीय भाषा में चलाने का निर्णय किया जाय तो उसके लिए प्रजा को तो तैयारी करने की आवश्यकता होती ही नहीं। जो भाषा घर में, बाजार में और समाज में बोली जाती है और जिस भाषा में मन्त्रीगण चुनाव के दिनों में मतदाताओं से विनय करते हैं, उसी भाषा में अगर उस प्रदेश का राज्य चले तो वह आदर्श स्थिति होगी। जहाँ राज्य आज अंग्रेजी में चलता है वहाँ प्रादेशिक भाषा चलाने के लिए एक दिन की भी तैयारी नहीं करनी पड़ेगी, यदि राज्य जनता के लिए चलता है तो! अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के प्रभावस्वरूप उत्तर प्रदेश और पंजाब राज्य के मुख्य मंत्रियों ने सरकारी कामकाज हिन्दी में करने की घोषणा की और अन्य हिन्दी प्रदेश की सरकारों ने उसका अनुकरण किया।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन की विफलता के पहलू को इस दृष्टिकोण से देखा जायगा कि प्रखर छात्र आन्दोलन को हिन्दी प्रदेशों की जनता का 'मुखर समर्थन' न मिल पाने के कारण भाषा विधेयक संसद् में पारित करके अधिनियम बना दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजी अनिश्चित काल के लिए स्थापित हो गयी। इसका कुपरिणाम भारतीय जीवन पर इस रूप में पड़ना था कि जब तक राज्य अंग्रेजी में चलेगा, बच्चों के माँ-बाप चाहेंगे ही कि उनको अब अन्य भाषा सिखायें या नहीं सिखायें; अंग्रेजी तो सिखानी ही है। ऐसी हालत में लोग लाचार होकर अंग्रेजी का पक्ष करते रहेंगे और हिन्दी को उसके नसीब पर छोड़ दिया जायगा। तत्समय अंग्रेजी जाननेवालों की जबरदस्त जमात मौजूद थी। उसी के हाथ में राज सत्ता थी। जनता के हाथ में मतदान का अधिकार भले ही रहा हो, राज्य तो अंग्रेजी जाननेवाली जमात के हाथ में ही था और उसका प्रयत्न था कि यही स्थिति दीर्घकाल तक चले। 'रौशन' ने लिखा है-

क्या बताएँ किस तरह हम फिर तिरस्कृत हो गए ।
जो समय के साथ थे, वे सब पुरस्कृत हो गए!
हम हवा की ठोकरों से युद्ध करते रह गए।
वे हवा से रुख बदलकर, फिर अलंकृत हो गए।।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन यह सन्देश छोड़कर समाप्त हुआ कि भाषायी क्रान्ति करके स्वदेशी-संगम-संस्कृति का उद्धार करने का संकल्प जनता को करना होगा। जब तक भारत का राज्य जनता की भाषा में नहीं चलेगा, भारत की तरुणाई और आम जनता प्राणवान् नहीं बनेगी और भारतीय संस्कृति में चैतन्य नहीं आयेगा। ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 18

जे. पी. आन्दोलन के स्मरणीय प्रतिफल

रामशिरोमणि शुक्ल

बिहार का यह आन्दोलन मूलतः छात्र आन्दोलन था, जिसको अपने शुरुआती दौर से ही जयप्रकाश नारायण ऐसे महान, निःस्वार्थी, अनुभवी, तपे-तपाए और निस्पृह राष्ट्रीय नेता का मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। जब से छात्रों के आन्दोलन के परिणामस्वरूप गुजरात की विधान सभा को केन्द्र सरकार भंग करने पर बाध्य हुई और बिहार के छात्रों ने बिहार विधान सभा को भंग करने की माँग उठाई, तब से छात्र आन्दोलन की शक्ति के बारे में राष्ट्र-स्तरीय चिन्तन प्रारम्भ हो गया। बिहार छात्र आन्दोलन का निर्देशन जे० पी० के द्वारा किये जाने के कारण इसका महत्त्व बढ़ गया और आन्दोलन ने अपने अंतिम चरण में राष्ट्रीय जन आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण किया।

जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में मार्च, 1974 में प्रारम्भ हुए बिहार छात्र आन्दोलन का दौर 15 महीने रहा। 18 महीने की इमरजेन्सी आई। भारत की लोकसभा के चुनाव घोषित हुए, जिसे आन्दोलन समर्थकों ने जे० पी० के नेतृत्व में 'लोकशाही बनाम तानाशाही' को मुद्दा बनाकर लड़ा। इमरजेंसी की आकस्मिक घोषणा के फलस्वरूप 'सम्पूर्ण क्रान्ति' की संघर्ष यात्रा 'लोकतंत्र के रक्षा-अभियान' में बदल गयी और सरकार को हटाना ही 'सम्पूर्ण लक्ष्य' बन गया। 1977 के चुनाव नतीजों ने सिद्ध कर दिया कि जे० पी० के आन्दोलन के प्रति जनता की पूरी सहमति और स्वीकृति थी।

बिहार आन्दोलन को कमोबेश निम्न बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अन्ततः देखने-समझने की जरूरत है-

- आन्दोलन लोकतंत्र को बचाने और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने में सफल रहा। नागरिक-शक्ति की अभिव्यक्ति हुई। यह स्पष्ट हुआ कि लोकतंत्र जनता की शक्ति के बिना नहीं बच सकता। लोकसम्मति लोकतांत्रिक जन संघर्ष की एक बुनियादी शर्त है, जो पूरी हो गयी।
- आन्दोलन ने बदलाव की सुगबुगाहट पैदा की। भारत में आजादी के बाद पहली बार युवा शक्ति बड़े पैमाने पर संगठित हुई। महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नों पर छात्र समुदाय ने सशक्त आवाज उठाई और वे राष्ट्र की राजनीति की मुख्य धारा में शामिल हुए।
- आन्दोलन में आदि से लेकर अन्त तक छात्रों का एक समूह, दलीय राजनीति से परे रहा। 'निर्दलीयता' इस आन्दोलन का वैशिष्ट्य था। आन्दोलन में शामिल छात्र देश की समस्याओं के लिए राजनेताओं और उनकी भ्रष्ट राजनीति को जिम्मेदार मानते थे।
- आन्दोलन को इस बात से भी बल मिला कि युवाजन और आम लोग 1967 और 1969 में विपक्षी दलों की मिली-जुली सरकारों का क्रियाकलाप देखने के बाद 'एक नयी शक्ति का उदय' आवश्यक समझते थे।
- व्यवस्था परिवर्तन और बहुआयामी बदलाव का स्वरूप सामने आया। सामाजिक सरोकारों से देश के करोड़ों नौजवानों का जुड़ाव हुआ और समाज परिवर्तन के परिदृश्य की ओर उनका आग्रह बढ़ा।
- आन्दोलन दीर्घ तक चलने के बावजूद 'पूर्णतया अहिंसक' रहा। यह तयशुदा पाया गया कि हिंसा का जनतंत्र के साथ कोई मेल नहीं है। अहिंसा लोकतांत्रिक क्रान्ति की प्राथमिक शर्त है और अहिंसा हर समय और काल में प्रासंगिक रहेगी।
- स्वतंत्र भारत के प्रजातंत्र और पार्टी प्रणाली द्वारा संचालित उसके स्वरूप पर प्रश्न चिन्ह लगे और चुनाव-व्यवस्था में सुधार तथा अपने जन प्रतिनिधि को वापस बुलाने के जनता के अधिकार का बिन्दु राष्ट्रीय-विमर्श का विषय बना।
- विभिन्न विरोधी दल एक मंच पर आए। स्वतंत्र भारत में जे० पी० के मार्गदर्शन में गठबन्धन की

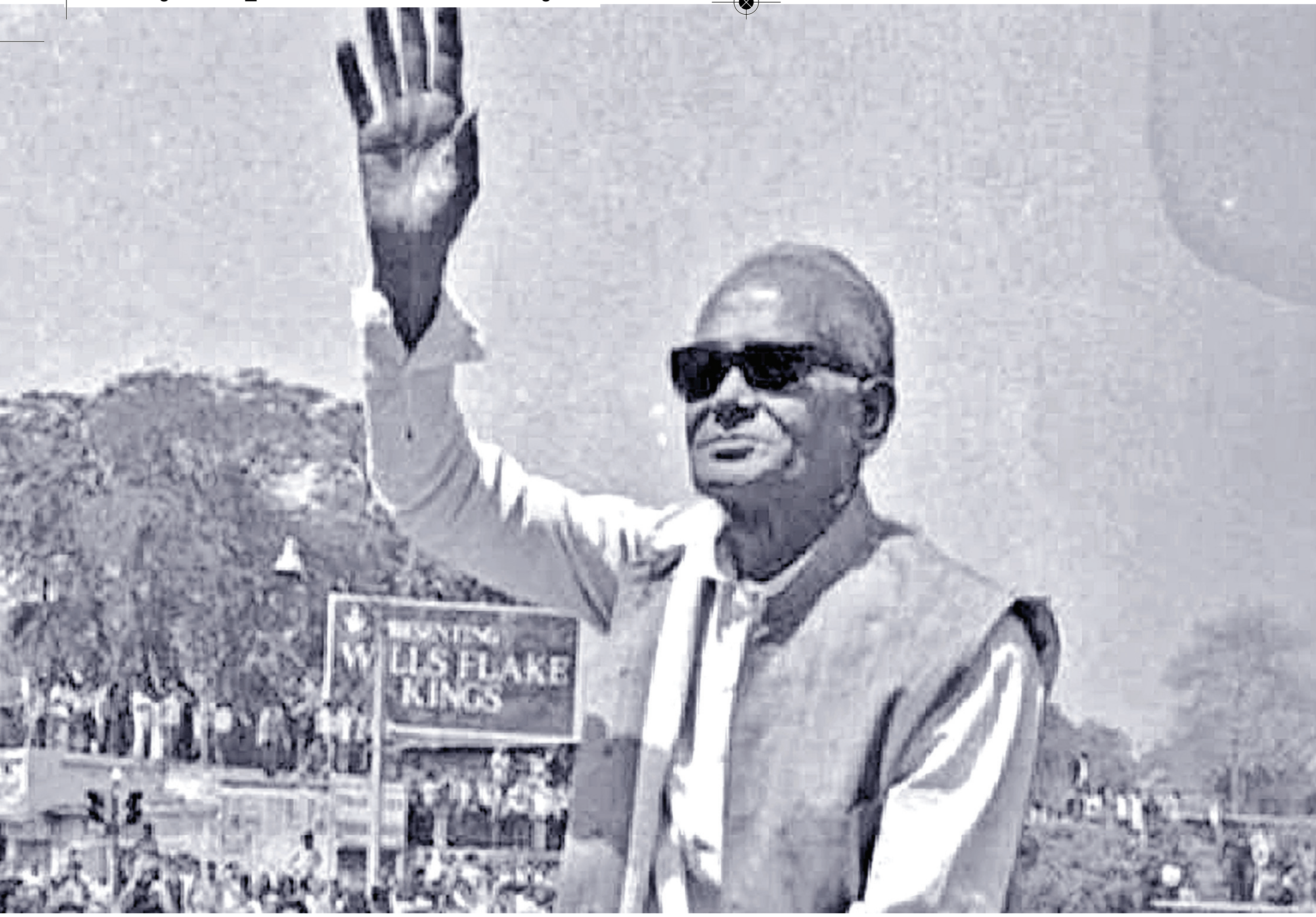

राजनीति का 'पहला सशक्त और सफल प्रयोग' राष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न हुआ।

- समाज के मध्यम और सबसे कमजोर लोगों को अपनी शक्ति और महत्ता का अनुभव हुआ।
- जाति, मजहब, लिंग की दीवारें टूटीं और राष्ट्र के बुनियादी मुद्दों पर भारतीय समाज बदलाव की प्रबल भावना के साथ संगठित होकर सामने आया। आन्दोलन की ऊर्जा में 'काफी समय तक' अलगाववाद और जाति-सम्प्रदायवाद का तिलिस्म टूटा रहा।
- यथास्थितिवाद और उसके निहित स्वार्थ का रिश्ता ध्वस्त हुआ।
- शासन और स्थानीय प्रशासन पर जनता के अंकुश लगाने का रास्ता खुला, सत्ता की जवाबदारी बढ़ी तथा प्रशासनिक पारदर्शिता का जन-आग्रह विकसित हुआ।
- आन्दोलन आजादी की दूसरी लड़ाई के रूप में सार्थक रहा पर सम्पूर्ण क्रान्ति साकार न हो सकी। इसका कारण यह बना कि इमरजेंसी के बाद संघर्ष 'तानाशाही बनाम लोकशाही' में परिवर्तित हो गया।
- आन्दोलन अपने आदि से अन्त तक असंगठित रहा। जे० पी० के महान व्यक्तित्व और उनकी लोकप्रियता पर ही आधारित रहा। संगठन का आधार मजबूत न होने के कारण आपात स्थिति लागू होने पर भहरा कर गिर पड़ा और भावना के आवेग में चलने वाला इसका प्रवाह शान्त हो गया।
- बिहार आन्दोलन एक बड़ा युवा आन्दोलन होने के बावजूद देश की युवा राजनीति को कोई धरोहर देकर नहीं गया।
- यह आन्दोलन आजादी के बाद आखिरी सबसे बड़ा आन्दोलन था, जो महान राष्ट्रीय मुद्दों पर लड़ा गया। आन्दोलन की मुख्य धारा से तमाम उपधाराएँ निकलीं। दलितों, पिछड़ों, महिलाओं, युवा कल्याण, समाज कल्याण, पर्यावरण आदि मुद्दों पर तमाम आन्दोलन उठे पर सिद्धान्त और प्रतिबद्धता की कमी तथा अपनी संकुचितता के कारण समाज की निम्नतम इकाई तक नहीं पहुँच सके।

सम्पूर्ण क्रान्ति का लक्ष्य पूरा न हो सका। जो-सब होने को रह गया है, वही भारत के छात्र-युवा आन्दोलन की विरासत है। जे० पी० के ही शब्दों में- "सम्पूर्ण क्रान्ति समग्र है, सतत् है, शुद्ध साधनों की है। ऐसी क्रान्ति उतनी ही शाश्वत है, जितना समाज का जीवन। दोनों का कोई अन्त नहीं है। हाँ, हर काल और परिस्थिति में उसका स्वरूप बदलता रहेगा, उसकी पद्धति नयी होती रहेगी। मूल्य नहीं बदलेंगे, दिशा और लक्ष्य नहीं बदलेंगे-कार्यक्रम बदलेंगे, कार्यशैली बदलेगी।"

गुजराती कवि हरीन्द्र दवे द्वारा रचित एवं भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा अनूदित निम्न कविता में जनभावना के अनुरूप जे० पी० के प्रति इन शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त की गयी है-

"हमें असत में से सत की तरफ़
तमस में से ज्योति की तरफ़
मृत्यु में से अमृत की तरफ़ ले जानेवाले मसीहा
आज हम सब खुले में एक साथ मिलकर
तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट कर पा रहे हैं
इसके लिए तुम्हारा आभार। आभार तुम्हारा जयप्रकाश ।।"

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 20

असम में छात्रों का सफल आंदोलन

भारतीय छात्र आन्दोलन के इतिहास में छह वर्षों की दीर्घतम अवधि तक चले असम आन्दोलन के पीछे इसके सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व संवैधानिक पक्ष थे और मूलभूत सवाल असमवासियों की पहचान और अस्मिता का था। असम की सामाजिक आर्थिक विकास की अवहेलना तथा विदेशी घुसपैठ के विरोध में अखिल असम छात्र संघ के नेताओं ने असमवासियों की आवाज उठाई और गण संग्राम परिषद के नेतृत्व में सम्मिलित विभिन्न संगठनों ने उसे बल और सम्बल प्रदान किया। निश्चित रूप से इस आन्दोलन ने सरकार की विकास योजनाओं की खामियों को उजागर किया, जिनके कारण देश में क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ता जा रहा था। कुछ क्षेत्र विकसित होते जा रहे थे और कुछ नितान्त उपेक्षित ही रह गये थे।

असम आन्दोलन के मूल में जाने पर असम की जमीनी सच्चाई नजर आने लगती है। इतिहास के पन्ने बताते हैं कि यहाँ के जनजातीय समुदाय, भारत की मुख्य धारा के मैदानी इलाके के सम्पन्न जन-समुदाय के शोषण के शिकार बने। स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों ने असम को शेष भारत से अलग रखने में अपना हित समझा। देशपर्यन्त तो 'उनकी बांटो और राज करो' की नीति थी पर उत्तर पूर्वांचल में उनका विश्वास था कि-

हिमांशु जयहिंद

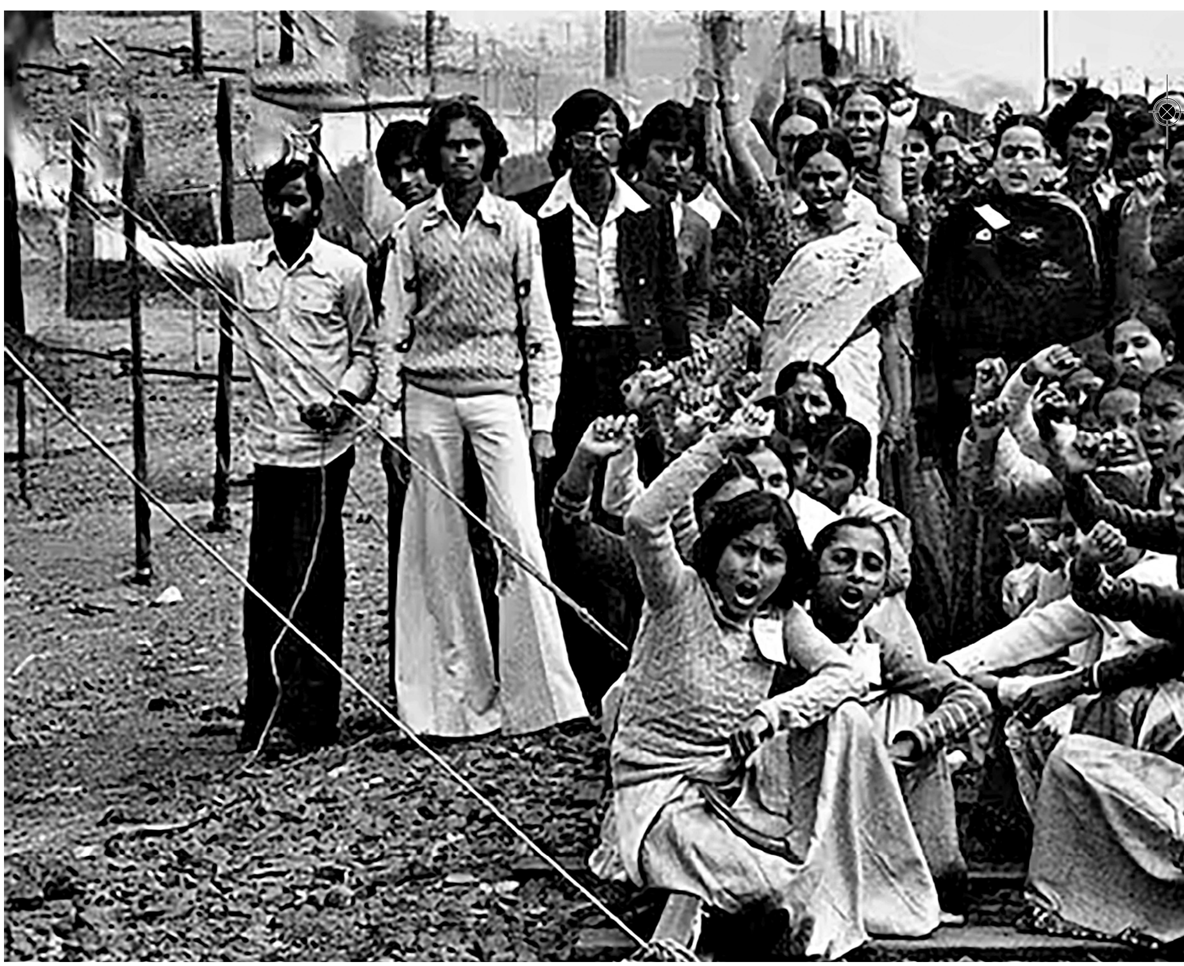

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 21

'दूर रखो और राज करो।' अंग्रेजों ने 1947 में कांग्रेस को भारत का राज्य सौंपा, परन्तु जाते-जाते असम को बंगाल का एक भाग बनाने की चाल चल गये; उसे 'सी' स्टेट का दर्जा दे गये। गोपीनाथ बारदोलाई ने इसका विरोध किया और गांधी जी के समर्थन के कारण

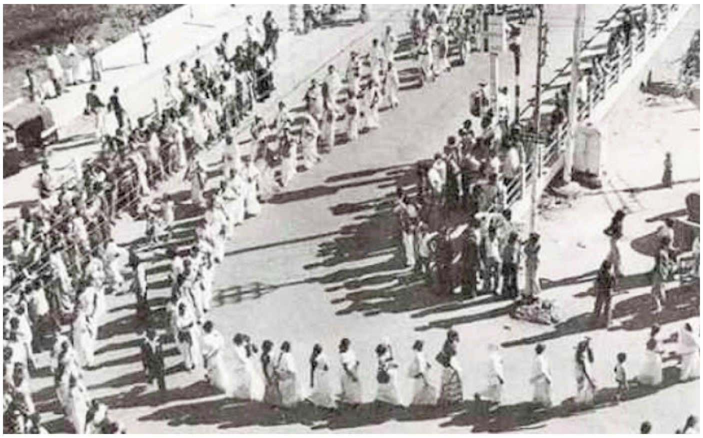

असम एक अलग प्रान्त माना गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ असम में पूर्वी पाकिस्तान के घुसपैठियों का अन्तहीन सिलसिला जारी रहा। असम के लोग हर स्तर पर उसे रोकने की माँग करते रहे, पर केन्द्र की ओर से उसे रोकने का न तो सार्थक प्रयास हुआ और न असम के लोगों की बात ही ठीक से सुनी गई। फखरुद्दीन अली अहमद जब भारत के राष्ट्रपति थे, यह मसला उठा, पर दबा दिया गया। 1975 में आन्दोलनकारियों की आवाज तेजी से उठने पर असम में विदेशियों की जाँच का कार्य पुलिस ने प्रारम्भ किया, पर वह भी रोक दिया गया। केन्द्र में सत्ता का परिवर्तन हुआ और जनता पार्टी की सरकार बनी। वह भी इस प्रश्न को टालती गई। असम में 1947 से चली घुसपैठ की यह प्रक्रिया 1979 तक बदस्तूर जारी रही। यानी 32 वर्षों की उपेक्षा और केन्द्र द्वारा अनसुनी असम आन्दोलन का कारक बनी।

सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार करना चाहिए कि जब किसी क्षेत्र के लोग अपनी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों के कारण पीड़ित हैं; उन पर पड़ोसी देश के लाखों घुसपैठियों व शरणार्थियों का बोझ है, देश के अन्य भाग उस बोझ को मिलजुल कर उठाने को तैयार नहीं हैं तथा केन्द्र उनके हिताहित की उपेक्षा कर रहा है-तो उन्हें 'सामाजिक-प्रतिरोध' का लोकतंत्रीय व्यवस्था में पूर्ण अधिकार है। यह सही है कि आन्दोलन के कारण करोड़ों रुपये का नुकसान हुआ। पर सवाल यह है कि क्या इसके कारण एक विशाल क्षेत्र की जनता के 'प्रतिरोध के अधिकार' को छीन लिया जाय ? वह प्रतिरोध, जो वे अपनी न्यायोचित माँगों के लिए और उन पर पड़े असहनीय अतिरिक्त बोझ के निवारण के लिए कर रहे थे और बराबर कह भी रहे थे कि विदेशियों की समस्या भारतीय संविधान के मानदण्डों के अन्तर्गत ही हल की जाय। लोकतंत्र में जहाँ करोड़ों रुपये चुनाव में खर्च होते हैं, वहाँ देश और समाज को, वर्ग या क्षेत्र-विशेष के उचित प्रतिरोध के कारण उपजा नुकसान भी बर्दाश्त करना ही चाहिये।

छात्र आन्दोलनकारियों के नेतृत्व में चले आन्दोलन के जरिये असम की जनता ने सम्पूर्ण देश का ध्यान एक बहुत ही यथार्थ और महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर उठाया। घुसपैठ का प्रश्न केवल असम के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण देश के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। वस्तुतः देश का अस्तित्व, स्वरूप और संस्कृति दाँव पर चढ़ी थी। जो समस्या उस समय असम में उठ खड़ी हुई थी, कल और राज्यों में उठ सकती थी, इस बात को भूलना नहीं चाहिए था। एक शायर ने लिखा है-

"बस इक कदम उठा था गलत राहे-शौक में।
मंज़िल तमाम उम्र मुझे ढूंढ़ती रही।"

असम आन्दोलन के कारण व्यापक जन-जागृति हुई। उस शक्ति का असम के नवजागरण में उपयोग हुआ और असम राष्ट्र की मुख्य धारा में लौट आया। केन्द्रीय तथा अन्य सरकारों को सबक मिला कि समानता के सिद्धान्त को नकारना और क्षेत्रीय असंतुलन रखना राष्ट्रहित के लिये घातक है। ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 22

सामाजिक न्याय और असहमति के निर्णायक दौर में छात्रों ने भरी हुंकार

धीरेंद्र जयहिंद

अगस्त, 1990 को प्रधानमंत्री वीपी सिंह ने घोषणा की कि अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) को केंद्र सरकार की सेवाओं और सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण मिलेगा। यह घोषणा बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री बीपी मंडल की अध्यक्षता में गठित मंडल आयोग की सिफारिशों पर आधारित थी, जिसका गठन मोरारजी देसाई सरकार ने 1979 में जातिगत भेदभाव के जटिल मुद्दे को हल करने के लिए किया था। वीपी सिंह सरकार के इस निर्णय से ओबीसी, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए कुल आरक्षण 49 प्रतिशत हो गया, जिससे काफी विवाद खड़ा हो गया।

हजारों छात्रों के सड़कों पर उतरने के साथ ही मंडल विरोधी प्रदर्शन समकालीन राजनीति की एक प्रमुख विशेषता बन गए। सितंबर 1990 में इसने एक भयावह मोड़ ले लिया जब देशबंधु कॉलेज के एक छात्र राजीव गोस्वामी ने आत्मदाह कर लिया। हालांकि गोस्वामी बच गए, लेकिन वे आंदोलन का चेहरा बन गए और जल्द ही आत्मदाह के कई और प्रयास हुए। इतिहासकार रामचंद्र गुहा के अनुसार, यह संख्या 200 थी; जिनमें से 60 से अधिक लोगों की जलने से मृत्यु हो गई।

मंडल आंदोलन ने उत्तर भारतीय मतदाताओं को जातिगत आधार पर निर्णायक रूप से विभाजित कर दिया और शक्तिशाली जाति-आधारित क्षेत्रीय दलों की शुरुआत हुई। इस आंदोलन के दो तात्कालिक समर्थक वे राजनेता थे जिन्होंने स्वयं को समाजवादी नेता के रूप में स्थापित किया था: लालू यादव और मुलायम सिंह यादव, जो समाजवादी प्रतीक राम मनोहर लोहिया के अनुयायी थे।

मंडल आंदोलन द्वारा शुरू की गई पहचान की राजनीति ने मायावती जैसी नेताओं को जन्म दिया, जो 1995 में उत्तर प्रदेश से चुनाव जीतकर भारत की पहली महिला अनुसूचित जाति की मुख्यमंत्री बनीं, और इसने दलितों की राजनीतिक आवाज को काफी बढ़ावा दिया। इसका मुकाबला करने के लिए, भाजपा ने कमंडल

राजनीति का रूप धारण कर लिया।

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में वर्ष 1990 सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा। इसी वर्ष मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के केंद्र सरकार के निर्णय के विरुद्ध देश के अनेक हिस्सों में व्यापक आरक्षण-विरोधी आंदोलन उभरा। यह आंदोलन केवल सरकारी नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके केंद्र में योग्यता, समान अवसर, सामाजिक न्याय और ऐतिहासिक वंचना जैसे जटिल प्रश्न भी थे। इसलिए 1990 का आरक्षण-विरोधी आंदोलन भारतीय समाज में मौजूद विभिन्न दृष्टिकोणों और अंतर्विरोधों को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

1979 में तत्कालीन जनता पार्टी सरकार द्वारा गठित आयोग का उद्देश्य सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का अध्ययन करना तथा उनके उत्थान के लिए उपाय सुझाना था। आयोग ने 1980 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और केंद्र सरकार की नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। इन सिफारिशों को लागू करने की घोषणा के बाद विशेषकर उत्तर भारत के अनेक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में छात्रों के बीच तीव्र विरोध आरंभ हुआ।

आंदोलन का प्रमुख आधार यह तर्क था कि आरक्षण से चयन प्रक्रिया में प्रतियोगिता और तथाकथित 'योग्यता' प्रभावित होगी। अनेक विद्यार्थियों को यह आशंका थी कि सीमित सरकारी नौकरियों में उनके अवसर कम हो जाएंगे। दिल्ली सहित देश के कई शहरों में छात्र सड़कों पर उतरे, प्रदर्शन हुए और शिक्षण संस्थानों में विरोध-प्रदर्शन तेज हुए। आंदोलन के दौरान आत्मदाह के प्रयासों जैसी अत्यंत गंभीर घटनाएँ भी सामने आईं, जिनसे पूरा देश स्तब्ध हुआ और आंदोलन को व्यापक राष्ट्रीय चर्चा मिली। इस आंदोलन में देशभर के युवा छात्र सड़कों पर उतरे। इलाहाबाद दिल्ली बनारस पटना कोलकाता चेन्नई बेंगलुरु जैसे शिक्षा केदो पर छात्रों ने दिन रात अलग-अलग तरीके से विरुद्ध प्रदर्शन किया। इस आंदोलन में जगह-जगह हिंसा भी हुई। आरक्षण समर्थक और आरक्षण विरोधियों में आए दिन लड़ाईयों की खबर से अखबार के पन्ने भरे रहते थे। अध्यापक पत्रकार वकील साहित्यकारों के साथ-साथ समाज का हर तबका आंदोलन की आज को नजदीक से महसूस किया। यह आंदोलन तब तक जारी रहा जब तक प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इस्तीफा नहीं दे दिया।

हालाँकि, इस आंदोलन को केवल 'योग्यता बनाम आरक्षण' के संघर्ष के रूप में देखना इसके व्यापक सामाजिक संदर्भ को सीमित कर देता है। भारत में जातिगत असमानता सदियों से शिक्षा, संसाधनों और रोजगार के अवसरों को प्रभावित करती रही थी। मंडल आयोग की सिफारिशों का मूल तर्क इसी ऐतिहासिक वंचना को कम करना था। दूसरी ओर, आंदोलन के विरोध में खड़े युवाओं की चिंताओं को

भी तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में समझना आवश्यक है। इस प्रकार 1990 का संघर्ष दो अलग-अलग सामाजिक अनुभवों और न्याय की अलग-अलग अवधारणाओं के टकराव का रूप ले चुका था। इस आंदोलन के बाद मंडल बनाम कमंडल की राजनीति शुरू हुई। राजनीति मोटे तौर पर समावेशी हुई लेकिन कांग्रेस का धीरे-धीरे सफाया हो गया।

इस आंदोलन ने भारतीय राजनीति को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया। मंडल के बाद पिछड़े वर्गों की राजनीतिक लामबंदी तेज हुई और भारतीय राजनीति में सामाजिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न अधिक मुखर होकर सामने आया। आरक्षण भारतीय चुनावी राजनीति, प्रशासनिक प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक न्याय की बहस का स्थायी विषय बन गया।

आगे चलकर सर्वोच्च न्यायालय के इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ मामले में आरक्षण संबंधी संवैधानिक प्रश्नों पर महत्त्वपूर्ण निर्णय आया और 27 प्रतिशत OBC आरक्षण को कुछ शर्तों के साथ स्वीकार किया गया।

अतः 1990 का आरक्षण-विरोधी आंदोलन भारतीय लोकतंत्र की उस जटिलता को सामने लाता है, जिसमें समानता का अर्थ सभी के लिए एक जैसा व्यवहार करना भर नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक असमानताओं को पहचानना भी है। इस आंदोलन ने एक ओर आरक्षण की नीति पर गंभीर प्रश्न उठाए, तो दूसरी ओर सामाजिक प्रतिनिधित्व और न्याय की आवश्यकता को राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में ला दिया। इसकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक परिणति यही रही कि भारतीय समाज को यह प्रश्न अधिक गहराई से विचारने के लिए विवश होना पड़ा कि अवसरों की समानता केवल प्रतियोगिता से सुनिश्चित होगी या उन सामाजिक परिस्थितियों को भी बदलना होगा, जिन्होंने प्रतियोगिता की प्रारंभिक रेखा ही सबके लिए अलग-अलग बना दी है। कुल मिलाकर आरक्षण विरोधी आंदोलन में छात्रों की गूंज देश दुनिया भर में सुनाई दी। ■

अन्ना हज़ारे का भ्रष्टाचार-विरोधी आंदोलन

जनता ने चाहा जनलोकपाल

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक का आरंभ भारतीय लोकतंत्र के लिए असाधारण राजनीतिक हलचलों का समय था। वर्ष 2011 में भ्रष्टाचार के प्रश्न ने जिस व्यापक जनचेतना को जन्म दिया, उसके केंद्र में सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हज़ारे और उनके नेतृत्व में उभरा भ्रष्टाचार-विरोधी आंदोलन था। यह आंदोलन शासन-व्यवस्था में पारदर्शिता, जवाबदेही और भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रभावी संस्थागत तंत्र की आवश्यकता को राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में ले आया। इसका सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम यह रहा कि लोकपाल जैसी अपेक्षाकृत लंबे समय से लंबित संस्थागत अवधारणा आम नागरिक की राजनीतिक शब्दावली का हिस्सा बन गई।

आलोक जयहिंद

आंदोलन की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उस समय के राजनीतिक वातावरण को देखना आवश्यक है। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार के दूसरे कार्यकाल के दौरान अनेक बड़े भ्रष्टाचार आरोप और घोटाले सार्वजनिक बहस का विषय बने हुए थे। 2G स्पेक्ट्रम आवंटन और राष्ट्रमंडल खेलों से जुड़े विवादों ने शासन की पारदर्शिता और सार्वजनिक पदों पर जवाबदेही को लेकर व्यापक असंतोष पैदा किया। इसी वातावरण में एक सशक्त लोकपाल संस्था की माँग को नई राजनीतिक ऊर्जा मिली। अन्ना हज़ारे और उनके सहयोगियों का मत था कि मौजूदा संस्थागत व्यवस्थाएँ उच्च स्तर के भ्रष्टाचार से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

5 अप्रैल 2011 को अन्ना हज़ारे ने नई दिल्ली के जंतर-मंतर पर अनिश्चितकालीन उपवास आरंभ किया। उनकी प्रमुख माँग एक मजबूत लोकपाल कानून बनाने और उसके प्रारूपण में नागरिक समाज की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने की थी। सरकार और अन्ना पक्ष के बीच बातचीत के परिणामस्वरूप 8 अप्रैल को दस सदस्यीय संयुक्त प्रारूप समिति गठित की गई, जिसमें सरकार की ओर से पाँच मंत्री और अन्ना हज़ारे की ओर से पाँच प्रतिनिधि शामिल थे। इसका उद्देश्य लोकपाल विधेयक का प्रारूप तैयार करना था।

इस समिति का गठन आंदोलन की पहली बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है, क्योंकि पहली बार सरकार और नागरिक समाज के प्रतिनिधि एक औपचारिक मंच पर लोकपाल कानून के प्रारूप पर विचार करने के लिए साथ आए। किंतु दोनों पक्षों के बीच लोकपाल की शक्तियों और उसके दायरे को लेकर गंभीर मतभेद बने रहे। अन्ना पक्ष द्वारा प्रस्तावित 'जन लोकपाल' की अवधारणा अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली और व्यापक संस्था की पक्षधर थी, जबकि सरकार का प्रारूप सीमित दायरे वाली व्यवस्था की ओर झुका हुआ था। विशेष रूप से प्रधानमंत्री, सांसदों, निम्न स्तर की नौकरशाही तथा राज्यों में लोकायुक्त जैसी संस्थाओं को इसके दायरे में लाने के प्रश्न विवाद के प्रमुख विषय बने।

सरकार ने 4 अगस्त 2011 को अपना लोकपाल विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया। इसे 8 अगस्त को विभाग-संबंधी संसदीय स्थायी समिति के पास भेज दिया गया। अन्ना पक्ष ने सरकारी

विधेयक को अपर्याप्त मानते हुए इसका विरोध किया और जन लोकपाल विधेयक की माँग को आगे बढ़ाया।

आंदोलन का दूसरा और कहीं अधिक व्यापक चरण 16 अगस्त 2011 से आरंभ हुआ। अन्ना हज़ारे ने दिल्ली के तिहाड़ जेल से बाहर आने के बाद रामलीला मैदान में अनिश्चितकालीन उपवास किया। इससे पहले उनके प्रस्तावित आंदोलन को लेकर प्रशासन और उनके बीच गंभीर मतभेद उत्पन्न हुए थे। इसके बाद आंदोलन को देश के अनेक हिस्सों में व्यापक जनसमर्थन मिला। सामाजिक माध्यमों, समाचार चैनलों और नागरिक समूहों ने आंदोलन के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधीवादी प्रतीकों, विशेषकर अहिंसक सत्याग्रह और उपवास, का प्रयोग आंदोलन की सार्वजनिक छवि का महत्वपूर्ण हिस्सा बना।

इस चरण में आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता उसका व्यापक जनसमर्थन था। बड़ी संख्या में युवा छात्र नौजवानों और नागरिकों ने सभाओं, प्रदर्शनों और सार्वजनिक अभियानों के माध्यम से भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनी नाराज़गी व्यक्त की। तिरंगा, 'मैं भी अन्ना' जैसी अभिव्यक्तियाँ और गांधीवादी टोपी आंदोलन की दृश्य पहचान बन गए। इस प्रकार भ्रष्टाचार का प्रश्न केवल संसद और राजनीतिक दलों की बहस न रहकर सामान्य नागरिक के दैनिक राजनीतिक अनुभव का विषय बन गया।

हालाँकि आंदोलन की सफलता को केवल भीड़ की संख्या से नहीं समझा जा सकता। लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसद कानून बनाने वाली संवैधानिक संस्था है और किसी भी लोकपाल कानून को अंततः संसदीय प्रक्रिया से गुजरना ही था। यही वह बिंदु था जहाँ आंदोलन और संसदीय लोकतंत्र के बीच संबंध जटिल दिखाई देता है। अन्ना पक्ष चाहता था कि सरकार उनकी माँगों को स्पष्ट समयसीमा के साथ स्वीकार करे, जबकि सरकार का तर्क था कि अंतिम कानून संसद की संवैधानिक और विधायी प्रक्रिया के अनुसार ही बनाया जा सकता है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी अगस्त 2011 में स्पष्ट किया कि सरकार और अन्ना पक्ष का उद्देश्य भ्रष्टाचार को कम करना है, किंतु दोनों के रास्तों और तरीकों में अंतर है।

24 अगस्त को सर्वदलीय बैठक में सभी राजनीतिक दलों ने अन्ना हज़ारे से उपवास समाप्त करने का अनुरोध किया और इस बात पर सहमति व्यक्त की कि जन लोकपाल विधेयक पर उचित विचार किया जाना चाहिए तथा एक मजबूत और प्रभावी लोकपाल की दिशा में व्यापक राष्ट्रीय सहमति बनाई जानी चाहिए। 27 अगस्त को संसद के दोनों सदनों में लोकपाल के प्रश्न पर चर्चा हुई। उस चर्चा में तीन प्रमुख बिंदुओं पर सदन की 'भावना' सामने आईः नागरिकों के लिए प्रभावी शिकायत-निवारण व्यवस्था अर्थात् सिटिजन चार्टर, उपयुक्त व्यवस्था के माध्यम से निम्न स्तर की नौकरशाही को लोकपाल के दायरे में लाना तथा राज्यों में लोकायुक्त की व्यवस्था।

इसी घटनाक्रम के बाद 28 अगस्त 2011 को अन्ना हज़ारे ने अपना अनशन समाप्त किया। यह आंदोलन का निर्णायक मोड़ था, लेकिन इसे लोकपाल कानून के तत्काल पारित हो जाने के रूप में देखना तथ्यात्मक रूप से सही नहीं होगा। वास्तव में संसदीय स्थायी समिति ने दिसंबर 2011 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और सरकार ने मूल लोकपाल विधेयक वापस लेकर 22 दिसंबर 2011 को संशोधित 'लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011' लोकसभा में प्रस्तुत किया। यह विधेयक 27 दिसंबर 2011 को लोकसभा से पारित हुआ, किंतु उस समय राज्यसभा से पारित नहीं हो सका।

इसलिए 2011 के आंदोलन का मूल्यांकन करते समय उसकी उपलब्धियों और सीमाओं दोनों को समझना आवश्यक है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनभावना को संगठित राजनीतिक शक्ति में परिवर्तित किया गया। लोकपाल जैसी संस्थागत व्यवस्था पर देशव्यापी बहस हुई और नागरिकों ने यह प्रश्न अधिक मुखरता से उठाया कि सार्वजनिक पदों पर बैठे व्यक्तियों को जवाबदेह बनाने के लिए कौन-सी संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं। आंदोलन ने यह भी दिखाया कि लोकतंत्र में चुनावों के बीच नागरिक समाज सार्वजनिक नीति और विधायी एजेंडे को प्रभावित कर सकता है।

दीर्घकालीन दृष्टि से देखें तो 2011 का आंदोलन भारतीय राजनीति के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इसने भ्रष्टाचार-विरोध को नैतिक अपील से आगे बढ़ाकर संस्थागत सुधार और राजनीतिक जवाबदेही के प्रश्न से जोड़ा। आंदोलन के बाद लोकपाल पर संसदीय विमर्श कई चरणों से गुज़रा और अंततः 2013 में लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम पारित हुआ। इस अर्थ में 2011 का आंदोलन किसी एक दिन या एक अनशन की घटना नहीं था, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में नागरिक समाज, जनमत और संसद के संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करने वाली प्रक्रिया था।

अंततः अन्ना हज़ारे का 2011 का भ्रष्टाचार-विरोधी आंदोलन भारतीय लोकतांत्रिक इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसने सत्ता से एक सीधा प्रश्न पूछाः क्या लोकतंत्र केवल प्रतिनिधियों को चुनने का माध्यम है, या चुनी हुई सत्ता को निरंतर जवाबदेह बनाए रखने की व्यवस्था भी है? इस आंदोलन ने इस प्रश्न को घर-घर पहुँचाया। इसकी सफलता को केवल इस आधार पर नहीं मापा जा सकता कि तत्काल कितनी माँगें स्वीकार हुईं; इसका वास्तविक प्रभाव उस जनचेतना में दिखाई देता है जिसने भ्रष्टाचार, पारदर्शिता और जवाबदेही को राष्ट्रीय राजनीतिक विमर्श का केंद्रीय विषय बना दिया। हालांकि अन्ना आंदोलन पर राजनीति भी हुई। इस आंदोलन से आम आदमी पार्टी का जन्म हुआ। आम आदमी पार्टी ने सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी का विरोध किया, जिसमें 1974 की तर्ज पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने खुलकर हिस्सा लिया। अन्ना आंदोलन से देश के नौजवानों ने जो उम्मीद पाल रखी थी एक बार फिर छात्र नौजवान ठगे गए। ■

लिंगदोह कमेटी की रिपोर्ट सुप्रीम कोर्ट : और छात्र

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि छात्रों के चुनाव लगभग उन सभी बुराइयों से ग्रस्त हो चुके हैं जिनसे आम चुनाव की राजनीति ग्रस्त है। लोकसभा और विधान सभा के चुनावों की ही भांति छात्र संघ के चुनावों में भी जातिवाद, बाहुबल और धनबल प्रभावी हो गया है। विश्वविद्यालय चुनावों में अधिकांश आचार संहिताओं को तोड़कर जब चुनाव अभियान चलता है तो लगता है कि आम चुनाव हो रहा है। छात्र संघ के चुनाव परिणाम को अनुकूल बनाने के लिये राजनीतिक दल करोड़ों रूपये व्यय करते हैं। चुनाव के दौरान प्रशासन को पुलिस का व्यापक बंदोबस्त करना पड़ता है। कभी-कभी छात्र नेताओं का चुनावी द्वंद्व हिंसक संघर्ष का भी स्वरूप ग्रहण कर लेता है। मुड़कर पीछे रेखा जाय तो एक दशक पूर्व तक स्थिति ऐसी नहीं थी।

डॉ. दिनेश प्रसाद मिश्र

यह बात भी स्वीकारणीय है कि राजनीतिक दलों ने स्थायी रूप से शैक्षणिक संस्थाओं में अपना बेस बना लिया है और अब उनके युवा संगठन विधिवत छात्र संघ के चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े करने लगे हैं, ताकि उनके कार्यक्रमों को चलाने के लिये तथा चुनावों में प्रचार करने के लिये उन्हें 'मनुष्य बल' उपलब्ध हो।

यह उचित होगा कि छात्र समुदाय देश की राजनीति के बारे में सजग रहे, विभिन्न विचारधाराओं से अवगत रहे, आगे चलकर चाहे तो राजनीति में भागीदारी भी करे। लेकिन सच्चाई यह है कि शिक्षा परिसरों में राजनीति की अति हो गयी थी। राजनीतिक गुटबाजी का दुष्परिणाम इस हद तक गहरा गया था कि छात्र एकता की असीम शक्ति ही धराशायी हो गयी। छात्र हित के स्थान पर दल विशेष का हित सर्वोपरि हो गया। छात्र नेता के रूप में एक ऐसा वर्ग उभरता जा रहा है, जो भय और आंतक के पर्याय के रूप में देखा जाता है। छात्र नेताओं का एक वर्ग ठेकेदारी तथा बाहुबल के जरिये व्यवसायरत है और असलहाधारियों को साथ लेकर चलने में गौरव का अनुभव करता है। छात्र संघों के चुनाव में चंदा उठाने के लिये बहुविध हथकंडे अपनाये जाते हैं, जिसमें लोगों को धमकाना भी शामिल है।

यह तथ्य भी उजागर है कि शिक्षा परिसरों में आपराधिक चरित्र के युवा प्रवेश कर गये हैं। तमाम छात्रावासों में पुलिस रेड पड़ने पर असलहों की बरामदगी और बाहर के अपराधियों की शरणागति भी प्रायः देखने में आती रहती है। छात्र संघ चुनाव में आयु सीमा निर्धारित न होने के कारण 40-45 वर्ष के अधेड़ भी पदाधिकारी बनने के लिये किसी न किसी डिप्लोमा कोर्स में नाम लिखाकर छात्र बने रहते हैं।

पूर्व स्वतंत्रता काल में विश्वविद्यालयों में पुलिस प्रवेश नहीं करती थी। कुलपति ही परिसर का सर्वेसर्वा होता था। उस काल में विश्वविद्यालय में पुलिस प्रवेश का एक ही उदाहरण है। वह है 1942 की अगस्त क्रान्ति के दौरान बी० एच० यू० में सेना के प्रवेश का। वह भी तब, जबकि बी० एच० यू० क्रान्तिकारियों का गढ़ बन गया था।

आजादी के बाद शिक्षा परिसरों में कई बार पुलिस प्रवेश हुआ। जब-जब हुआ छात्र संघों ने इसके विरुद्ध संघर्ष किया और पुलिस को कैम्पस छोड़ना पड़ा। वर्तमान में आपराधिक प्रवृत्ति और अनावश्यक हिंसा के विस्तार के कारण विश्वविद्यालय परिसर पुलिस छावनी में तब्दील हो गये हैं। विचारणीय है कि शिक्षण संस्थाओं की इस हद तक गरिमा घटाने का जिम्मेदार छात्र राजनीति करने वाला ही एक वर्ग है। यही कारण है कि आम छात्रों के एक बड़े वर्ग में छात्र संघों के प्रति अनास्था का भाव बढ़ता जा रहा है, जो कि लोकतंत्र के लिये एक खतरनाक संकेत है।

छात्र संघों की संरचना-छात्रों में शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के विकास; संसदीय प्रणाली की व्यवस्था के प्रशिक्षण तथा समय-समय पर छात्रों की समस्याओं पर संघर्ष करने व उनके हित-रक्षण के लिये की गयी थी। वे सारे के सारे उद्देश्य नेपथ्य में चले गये या एक हद तक तिरोहित-जैसे हो गये।

लिंगदोह कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रभावी किये गये दिशा निर्देश, इसीलिये मूर्त रूप में हम सबके सामने हैं। उनके औचित्य को स्वीकार करना बाध्यकारी हो गया है। लिंगदोह रिपोर्ट अधिकांशतः उचित है। मात्र इस प्रश्न पर पुनर्विचार होना चाहिये कि छात्र संघों का गठन 'प्रत्यक्ष चुनाव' के आधार पर हो, जिसमें सभी छात्र भाग ले सकें। अनुशासन के नाम पर कुलपतियों व प्राचार्यों को इतना अधिकार सम्पन्न न कर दिया जाय कि वे जब जिसको चाहें छात्र संघ के चुनाव में भाग लेने से वंचित कर दें। एक प्रश्न का शंका-समाधान होना बाकी रह जाता है कि - "लिंगदोह समिति ने छात्र संघ चुनावों में उम्मीदवारी के लिये जिन कृत्यों को अयोग्यता का मापदण्ड बताया है, वे संसद् और विधान सभाओं के चुनावों के लिये क्यों नहीं लागू हो सकते?" ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 27

दलों की बैसाखी बनने से जेन अल्फा का इनकार

नचिकेता पटनायक

15 अगस्त, 1947 को मिली आज़ादी से अब तक भारत की चार पीढ़ियाँ तैयार हो गयी हैं। पहली पीढ़ी शारीरिक रूप से जर्जर और बूढ़ी हो चुकी है। दूसरी वृद्धावस्था की देहरी पर दस्तक देने वाली है। तीसरी अधेड़ हो चुकी है। चौथी किशोरावस्था पारकर जवानी का चौखट लांघने की दहलीज पर है। आज की भाषा में इस चौथी पीढ़ी को जेन जी से संबोधित किया जा रहा है। उल्लास की बात है इसके आगे की पांचवीं पीढ़ी पूर्व की सभी पीढ़ियों से अलग हटकर अत्यंत गतिशील और उत्साहित है। इस पांचवीं पीढ़ी को जेन अल्फा की संज्ञा दी जा रही है। यह पीढ़ी 21वीं सदी के पहले दशक की उन्नत पौध है। इसके हाथ में संचार के अति आधुनिक औजार है। चुटकी बजाकर हथेली पर सरसों उगाने की तमन्ना लिए या पीढ़ी पलक झपकते सब कुछ हासिल कर लेने की फितरत से लैस है। इनमें समर्पण की इंतहा है। यह पीढ़ी जिसे भी चाहती है टूट कर चाहती है और मुंह मोड़ने पर आ जाए तो मां-बाप की भी नहीं सुनती। किसी भी सूरते हाल में यह किसी की बैसाखी बनने को कतई तैयार नहीं है। इसका फंडा पानी की तरह बिल्कुल साफ है। अंदर बाहर सब कुछ स्पष्ट है। छिपाव और दुराव इसके शब्दकोश में नहीं है। उसे यह जानने का हक़ है कि राष्ट्रीय आन्दोलन को जिन उपादानों से बल और सम्बल मिला, उसमें उसका क्या योगदान है, उसका स्थान कहाँ है और उसके अतीत का मूल्यांकन किस स्तर पर हुआ है? नयी पीढ़ी को आज तक यह नहीं बताया गया कि 1848 ई० में छात्र दादाभाई नौरोजी और माण्डेक ने 'दि स्टूडेण्ट्स लिटरेरी एण्ड साइण्टिफिक सोसाइटी' की स्थापना कर भारत के छात्रों के प्राथमिक संगठन को जन्म दिया था। 1874 ई० में आनन्दमोहन बोस ने 'कलकत्ता स्टूडेण्ट्स एसोसिएशन' की स्थापना कर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ भारतीय छात्र आन्दोलन की आधारशिला रखी थी। इन्हीं छात्र नेता-द्वय ने 1876 ई० में 'इण्डियन एसोसिएशन' का गठन कर इण्डियन (भारतीय) शब्द से ही अपने राष्ट्रवादी स्वरूप को प्रथमतः उजागर करके भारत के युवकों का विशाल संगठन खड़ा किया था। 1874 ई० में छात्र संगठन बना और उसके कहीं 11 वर्षों बाद 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई, जिसमें इन छात्र-युवा नेताओं का

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 28

राष्ट्रस्तरीय युवा संगठन शामिल हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करनेवाले ए० ओ० ह्यूम ने राष्ट्रीय संगठन बनाने के प्रयास में कलकत्ता यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएटों के नाम पत्र प्रकाशित कर अपील की कि 'यदि आपमें से 50 समर्पित शिक्षित छात्र मिल जायँ तो राष्ट्रीय स्तर पर संगठन कायम किया जा सकता है।'

भारत के छात्रों को यह जानने का अधिकार है कि 1900 ई० में भारत में छात्र संगठनों के गठन की प्रक्रिया जोर-शोर के साथ प्रारम्भ हो गयी थी। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रथम बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलन 1905 का सूत्रपात कलकत्ता के 'ईडेन हिन्दू कालेज' के छात्रों ने प्रथम जुलूस निकाल कर किया था। वही बंग-भंग आन्दोलन 1857 ई० के महासंग्राम के बाद भारतीय स्वतन्त्रता-संघर्ष का आधार-आन्दोलन था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक जुझारू नेता-लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और एनी बेसेण्ट आदि ने स्कूल-कॉलेजों के छात्रों के माध्यम से ही जनशक्ति को उभारने का काम किया था, जिसके फलस्वरूप भारत में जन आन्दोलनों और क्रान्तिकारी संघर्षों की शुरुआत हुई।

1920 ई० में मोहनदास करमचन्द गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन की कमान सँभालते ही भारत के छात्रों से पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में शामिल होने का आह्वान किया था। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के सम्पूर्ण ध्यान केन्द्र छात्र ही थे और वे ही उनके संघर्ष की शक्ति थे। जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदि तत्कालीन समाजवादी नेताओं के समर्थक, रक्षक और आन्दोलन-विस्तारक छात्र ही थे। तब आन्दोलन का लक्ष्य धुँधला स्वराज्य था, जिसकी व्याख्या स्पष्ट न थी। 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में छात्रों ने जेलें भर दी थीं। कॉलेज के विद्यार्थी और स्कूली बच्चे पुलिस की लारियों के भीतर घुस जाते थे और बाहर निकलने से इन्कार कर देते थे। क्रान्तिकारी युवकों की शहादतों और राष्ट्रव्यापी छात्र आन्दोलन ने सारे राष्ट्र में स्फूर्ति और उत्साह का संचार करने की अद्भुत शक्ति दिखा दी थी।

1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन पूर्ण रूप से भारतीय छात्रों और युवकों के नेतृत्व में चला। राष्ट्रीय नेताओं तथा प्रान्त और जिला-स्तर के नेताओं की गिरफ्तारी होते ही भारत के एक-एक प्रान्त, शहर, कस्बों और गाँवों में छात्रों और युवकों ने आन्दोलन की कमान सँभाल ली थी। बम्बई से शुरू होकर दिल्ली, इलाहाबाद, कानपुर, पटना और तमाम स्थानों पर छात्रों के जुलूसों पर गोलियाँ चलीं, बनारस यूनिवर्सिटी में सेना का प्रवेश हुआ। अहिंसा पर आधारित आन्दोलन के स्वरूप को बदलकर वे हजारों छात्र अपने प्रदेशों में फैल गये और 'अगस्त-आन्दोलन' ने जन विद्रोह का रूप धारण कर लिया। छात्रों के नेतृत्व में चला यही अन्तिम आन्दोलन था, जो ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत की आखिरी कील बना। आज भी भारत के सभी राजनीतिक दलों के नेताओं की बैसाखी छात्र और युवक ही हैं।

वर्ष 1900 ई० से 1947 ई० के दौर के तमाम अग्रणी छात्र आज़ादी के बाद देश और प्रदेशों के राजनेता बने। सत्ता और विपक्ष में रहकर उन्होंने अपनी बहुविध सेवाओं द्वारा भारतीय समाज और राजनीति का मार्गदर्शन किया। उनमें से तमाम अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण या स्वातन्त्र्य-उद्देश्य के पूरा होने के कारण अथवा स्वातन्त्र्योत्तर-काल की बदली परिस्थितियों में अपना समुचित स्थान न देख; राजनीति से अलग हो गये। कुछ ऐसे भी थे जो सत्ता-तन्त्र की जोड़-तोड़ में अपनी सपाटबयानी और कार्यपद्धति में बदलाव न ला पाने के कारण राजनीति की धारा से अलग होने को मज़बूर कर दिये गये।

आज़ादी मिले 79 वर्ष बीत गये। किसी देश के इतिहास में 79 वर्ष का समय कोई छोटा काल खण्ड नहीं होता। इन दशकों में देश के छात्रों के सामने धुंध-सी छायी है। अपनी दिशा और मञ्जिल को लेकर उनके मनों में असमञ्जस है। परिवार, समाज, देश, राष्ट्रीयता सब-कुछ सन्दिग्ध स्थिति में हैं। संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, अर्थव्यवस्था और चरित्र कुछ-न-कुछ अंशों तक खण्डित हैं। व्यक्तिगत, दलीय और संकुचित जातीय भावनाएँ, भ्रष्टाचार और स्वार्थपरता अनेक रूपों में सबके सामने उजागर हैं। सामूहिक मन, सामूहिक सोच और दायित्व-बोध शंकाग्रस्त हैं। सामाजिक न्याय के नाम पर समाज में जाति को ही प्रतिष्ठित किया जा रहा है। भूमण्डलीकरण के रूप में आर्थिक विकास का लबादा ओढ़े आर्थिक साम्राज्यवाद अग्रसर है।

भारतीय समाज की वर्तमान स्थिति देश की युवा शक्ति को तरह-तरह की चुनौती दे रही है। एक ओर साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, आतंकवाद, शोषण, गरीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई, निरक्षरता, उद्देश्यहीन शिक्षा आदि के रोग से जन-जीवन ग्रस्त-संत्रस्त है और दूसरी ओर वह बाज़ारवाद तथा पश्चिमी संस्कृति के घटाघोप से आशंकित है। समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी आनन्द मना रही है और करोड़ों शिक्षित-अशिक्षित नौजवान एक ख़तरनाक दरार के कगार पर खड़े हैं। दो संस्कृतियों की टकराहट हो रही है। शानदार अतीत धूमिल पड़ रहा है, वर्तमान दिग्भ्रान्त है और भविष्य अनजाने-अनचाहे का संकेत दे रहा है।

"यह नाउम्मेदी, यह बेयक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीद की झलक है। इन्हीं अँधेरों को पार करके, यक़ीन की रोशनी मिलेगी।"

परीक्षा प्रणाली में धांधली पर सरकार की जवाबदेही को लेकर कॉकरोच जनता पार्टी के आह्वान पर देशभर में छात्र आंदोलन हुए हैं। छात्र और राजनीति के विषय पर इन दिनों फिर से बहस-विमर्श जीवित हो उठे हैं। 1920 ई० में जब गांधी जी ने छात्रों को शिक्षण संस्थाएँ छोड़कर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ने का आह्वान किया था, तब यह बहस राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार मुखर हुई थी। महामना मदनमोहन मालवीय और रवीन्द्रनाथ टैगोर-जैसे महान् चिन्तकों की राय थी कि छात्र पूरी तरह पढ़-लिखकर, परिपक्व नागरिक के रूप में भारतीय राजनीति में उतरें। जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस से लेकर जयप्रकाश नारायण तक ने स्वतन्त्रता संग्राम में सब-कुछ न्योछावर करने के लिए छात्रों की पुकार की थी और कहा था कि बिना युवक-शक्ति के शामिल हुए कोई भी क्रान्ति सफल हो ही नहीं सकती। तत्कालीन भारत के लाखों छात्रों ने अपने को स्वतन्त्रता की यज्ञवेदी में झोंक दिया था और भारतीय राजनीति के अँधेरे को शमा जलाकर रौशन किया था। स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही छात्रों से साफ़ शब्दों में कहा गया कि उनका रोल समाप्त हो गया है, अब वे अपने परिसरों में वापस चले जाएं और अनुशासन में रहें।

इतिहास का शाश्वत सत्य है कि सारी दुनिया में राष्ट्रवाद, आदर्श समाज-संरचना और नवजागरण आन्दोलन का जन्म और विकास बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा ही किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में सामाजिक क्रान्ति को देश-काल की स्थिति के अनुसार ढालने के अति महत्त्वपूर्ण दायित्व से भारत के करोड़ों छात्रों को विलग कर दिया गया, परिणामतः उनके प्रेरणा-स्रोत सूख गये। जिस छात्र समुदाय ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब-कुछ होम कर दिया था, आज उसी के उत्तराधिकारी विस्थापित मानसिक दशा में अपनी ज़िन्दगी के चौराहे पर खड़े होकर तय नहीं कर पा रहे हैं कि उनका गन्तव्य किस दिशा में है। जिस छात्र-जमात ने सारे युग पर अपना प्रभाव डाला था, उससे यह अपेक्षा अवश्य की जा रही है कि वह यदि राजनीति में रहे तो राजनेताओं द्वारा इच्छित दल-विशेष की बैसाखी बनकर रहे, न कि सामाजिक क्रान्ति का संवाहक बनकर। ऐसे में एक सवाल खड़ा होता है कि भारत की तरुणाई अपनी अदम्य इच्छा शक्ति के द्वारा इतिहास-क्रम को नया मोड़ देकर एक नये भारत की संरचना कर सकती है?

आजादी के बाद भारत के राजनीतिक दलों ने छात्रों के संगठन बनाए। छात्र हित के लिए ऑल इंडिया स्टूडेंट फेडरेशन, स्टूडेंट फेडरेशन ऑफ़ इंडिया, एनएसयूआई, समाजवादी युवजन सभा, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद जैसे अनेक संगठन अस्तित्व में आए। उल्लेखनीय तथ्य है कि जनसंघ के कोख से उपजी भारतीय जनता पार्टी के छात्र संगठन एबीवीपी का उदय जनसंघ के गठन के पूर्व ही हो चुका था। वर्तमान में एबीवीपी का दायरा और विस्तार सर्वाधिक है। लेकिन ताजुब की बात है शिक्षा और परीक्षा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर देश स्तर पर फैले हालिया छात्र आंदोलन से यह संगठन वैसे ही नदारत रहा जैसे गधे के सिर से सिंग।

पूर्व के आंदोलनों की तुलना में लगभग डेढ़ महीने तक चला यह छात्र आंदोलन हल्के बल प्रयोग, छिटपुट झड़पों , कुछ प्रदर्शनकारियों की गिरफ्तारी के अलावा लगभग शांतिपूर्ण ही रहा। जंतर मंतर पर वाम दलों के छात्र संगठन अंत तक जुटे रहे। शिक्षा परीक्षा में जवाबदेही को लेकर देश के विभिन्न हिस्सों में एनएसयूआई के कार्यकर्ता पहले से ही धरना प्रदर्शन जुलूस निकालते रहे। आम आदमी पार्टी, समाजवादी पार्टी सहित तमाम सामाजिक संगठनों ने भी जंतर मंतर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। लेकिन छात्रों का सबसे बड़ा संगठन होने का दावा करने वाला अखिल विद्यार्थी परिषद अंत तक उदासीन ही रहा। इसमें कोई दो राय नहीं कि अगर एबीवीपी के समर्पित पदाधिकारी छात्रों की भावनाओं को समझ कर सही समय पर मोर्चा संभालते तो इसकी भी नौबत नहीं आती।

दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय छात्र-समाज के सामने पहले की तरह नायकत्व का एक भी कीर्ति स्तम्भ मौजूद नहीं है-जो उनके दिल में उल्लास भर कर जीवन को भव्य बनाये, लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करे और राष्ट्रीय स्तर पर उनका मार्गदर्शन करके उन्हें अपने साथ लेकर चले। लेकिन हमें भरोसा रखना चाहिए यह स्थिति हमेशा नहीं रहेगी। शानदार अतीत की प्रेरणादायक घटनाएँ, शिक्षाएँ, दिशाएँ और बलिदानी स्मृतियाँ उसके साथ हैं। इन परिस्थितियों में भारत के छात्रों को ऐसा पथिक बनना होगा जो हर सफ़र को अपनी मञ्जिल और हर मञ्जिल को अपना सफ़र समझे। उसे सीढ़ियों और सहारों की आवश्यकता न रहे, वह फिर से जान और मान ले कि छात्र किसी मनुष्य का नहीं वरन् इंकलाब का नाम है। एक प्रसिद्ध लोक नारा है "संघर्षों के साए में इतिहास हमारा पलता है ,जिस ओर जवानी चलती है उसे और जमाना चलता है"। अंत में डॉक्टर वीरमाल की प्रसिद्ध कविता के कुछ अंश

"भूगोल बने, इतिहास जगे, ऐसा कुछ परिवर्तन कर दो, रत्नों का फिर वरदान मिले, सागर का वह मन्थन कर दो, ऐ तरुण देश के यों महको, घर-आँगन को चन्दन कर दो।" ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 30

बुरा न मानो ....गाली है

(इन दिनों गालियों पर बहस हो रही है। अपशब्द, गालियां, अश्लील और अभद्र व्यवहार मन और वचन के लिए ठीक नहीं है। भाषा में अश्लीलता और गालियों के बारे में भारतीय समाज का विश्वास और मान्यता क्या है? डॉ चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने भारतीय शास्त्रों के उदाहरणों और उद्धरणों से संकलित आलेख उस समाज को समर्पित किया है जहाँ शिशु के जन्म लेते ही उसके लिंग भेद का संज्ञान लिया जाता है और जन्म से मृत्यु तक उसका उल्लेख किया जाता है)

भारत की प्रसिद्ध विद्वान देवांगना देसाई की एक पुस्तक इरोटिक स्कल्पचर ऑफ इंडिया – ए सोशियो कल्चरल स्टडीज़ में असभ्य या अश्लील कहे जा सकने वाले शब्दों के सन्दर्भ में एक अध्याय है। पुस्तक में प्राचीन भारतीय जीवन में अश्लिलोक्ति और जुगुप्सोक्ति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक प्रमाण हैं।पुस्तक में प्रस्तुत की गयी शोध के अनुसार प्राचीन भारत में कुछ धार्मिक अनुष्ठानों (यज्ञ) और सामाजिक उत्सवों पर असभ्य या अश्लील कही जा सकने वाली भाषा का समाज प्रयोग करता था।

अतीत में ऐसा मना जाता था कि अभद्र भाषा और संकेतों (मुद्राओं) में जादुई (मोहन) शक्तियां होती हैं। पुरातन काल में ऐसा विश्वास किया जाता था कि भाषा और संकेतों में अभद्रता बुराई,खतरे,दुर्भाग्य को दूर करता है और वह फल प्राप्ति में सहायक होता है।

जे.गोंड ने वैदिक संस्कृति में भाषा की अभद्रता की अनुष्ठानिक उपयोगिता/कार्य को रेखांकित किया है। अभद्र भाषा (गाली) दुष्ट शक्तियों और दुर्भाग्य को दूर करती हैं या उन्हें दूसरी दिशा में भटका देती हैं। यह “पवित्र” करती है। उदहारण के लिए शतपथ ब्राह्मण (x।।।,5.2.9) के अनुसार बातचीत, संवाद अथवा उपदेश में उपहास ,कलंकित करना/गाली देना,व्यंग्य करना या नीचा दिखाना इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए होता है। कात्यायन श्रौतसूत्र (xx,6.21) में भी इसी विचार की पुनरावृत्ति है।

ऐसा माना जाता था कि अभद्र शब्द और असभ्य भाषा बरसात लाने में मदद करती है। दक्षिण भारत में वर्षा प्राप्त करने के लिए महिलाओं द्वारा अभद्र गीत गाये जाते थे।

देवयात्रा नामक उत्सव में देवयात्रा के दौरान मंदिर में नृत्य करने वाली कन्याओं द्वारा अश्लील/असभ्य गीत गाना और अभद्र इशारे करना देवयात्रा का हिस्सा था.इसका उद्देश्य उपजाऊपन को बढ़ावा देना था।

अश्लील शब्द और चुटकुले, मौसमी उत्सवों जैसे की होली,वसंतोत्सव,और मदन महोत्सव और देवताओं के सम्मान में मनाये जाने अन्य उत्सवों पर पर कहे जाते थे। होली के उत्सव पर, अश्लील चुटकुलों का कहा जाना उत्सव का एक विशेष अंग होता था जिसे “भांड बधाई” या जोगीरा कहा जाता था।

हिंदी में भांड शब्द का विशेषण के रूप में अर्थ होता है- बेशर्म,अपमानजनक,अश्लील और अभद्र।

गणेश चतुर्थी के उत्सव में ऐसी एक परंपरा है जिसमे एक पडोसी अपने दूसरे पडोसी को अपमानजनक शब्द कहता है जिसका वह प्रत्युत्तर देता है। ऐसा माना जाता है कि एक दूसरे को अपशब्द या गाली कहना – चतुर्थी के दिन चन्द्रमा देखने के दोष या पाप से मुक्त करता है। दुर्गा पूजा के दसवें दिन शबरोत्सव में अश्लील/अभद्र अभिव्यक्ति उत्सव का मुख्य हिस्सा होती है।

जीमूतवाहन ने अपने काल विवेक (पृष्ठ ५१४) में इस बात का उल्लेख किया है कि जो व्यक्ति, भग -लिंग से सम्बंधित शब्द , गीत और क्रिया में भाग नहीं लेता उस पर देवी का कोप होता है। ग्रामीण बंगाल में आज भी यह परंपरा दुर्गा पूजा में जीवित है। देवी जया दुर्गा की उपासना में नग्न होकर नाचना, देवी के बारे में बुरा बोलना और अपनी उपासना स्वीकार न करने पर उसे धमकाने जैसी परंपरा विद्यमान है। गुजरात के लोक नाट्य “भवाई” जो देवी अम्बा के सम्मान में किया जाता है उसमे अभद्र/अश्लील तत्व होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अश्लील प्रदर्शन दुरात्माओं को डराती हैं।

इसका उल्लेख हमें लोककथाओं और अनुष्ठानों में देखने को मिलता है। खजुराहो के प्रसिद्ध मंदिरों से जुडी दन्त कथाओं में इस विश्वास की स्थापना हमें पृथ्वीराज रासो के महोबा खंड में मिलती है।

दक्षिण भारत की एक परंपरा के अनुसार जब वर्षा की आवशयकता होती है तब महिलाएं पुरुष की एक मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसे पालकी में रखती हैं और उसे अश्लील गीत गा घर घर ले जा अंत में खेत में स्थापित करती हैं।

अश्वमेध यज्ञ में अनुष्ठानिक संयोग/मैथुन/सम्भोग के साथ यौन संवाद यज्ञ का महत्वपूर्ण हिस्सा होता था। राजा की चारों पत्नियाँ इसमें भाग लेती थी।अग्र महिषी अश्व के साथ शयन करती थी और दूसरी पत्नियाँ अश्लील भाषा का प्रयोग करती थी (पृष्ठ संख्या १००)। भारतीय विवाह संस्था का इतिहास,अध्याय चार, अग्नि और यज्ञ के अंतर्गत, विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने इसका विस्तार से उल्लेख किया है (देखें पृष्ठ १२६ से आगे)।

महाव्रत अनुष्ठान जिसमे प्रजापति के लिए सोम यज्ञ किया जाता था,में भी कुछ रोचक तथ्य देखने को मिलते हैं। इस अनुष्ठान में एक पुंश्चली (वेश्या) और एक ब्रम्हचारी यज्ञ वेदी के उत्तर में एक दूसरे को गालियाँ (अश्लील शब्द) देते थे। यह परस्पर अपमान उपजाऊपन को बढ़ाने के लिए समर्पित किया जाता था। इसी अनुष्ठान में दक्षिण दिशा में एक परदे के पीछे एक मागध और एक वेश्या समागम करते थे।

वंश वृद्धि उत्सव या ऐसे उत्सव जो उर्वरता बढ़ाने के लिए मनाये जाते थे, हमें प्राचीन जीवन का दर्शन कराते हैं।

इन उत्सवों का सम्बन्ध कृषि जीवन से होता था जो उर्वरता को बढ़ाने के लिए यौन मन्त्र (जादू , सम्मोहन) के विश्वास में, समाज की आस्था को प्रदर्शित करते हैं। आमोद प्रमोद , समाज की यौन नैतिकता में ढीलाई , घरों को सजाना , सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनना इन उत्सवों का अंग था। प्राचीन और मध्ययुगीन भारत के इन उत्सवों में वसंतोत्सव,मदन महोत्सव,होली,कौमुदी महोत्सव महत्वपूर्ण थे। इनके अतिरिक्त दोलायात्रा, अशोकाष्टमी,यक्ष रात्रि, दमनक चतुर्दशी,अम्बु बाची, नागपंचमी, मित्रसप्तमी, रथसप्तमी, उदक सेवा महोत्सव, शबरोत्सव आदि उत्सव भी थे।

अश्लील शब्दों का प्रयोग और हाव भाव इनमे से अधिकतर उत्सवों का आवश्यक अंग होता था। सुबंधु ने होली पर बोले जाने वाले अश्लील शब्दों का उल्लेख किया है। चंद बरदाई (१२ शताब्दी) के बाद के मिथकों और लोक कथाओं में कम से कम और हेमाद्री (१* शताब्दी) के समय ऐसा विश्वास था कि होली के दिन अश्लीलता राक्षसी होलिका और दानव धोंडा को दूर रखेंगी और होलिका का नाश करने में सहायक होंगी।

इसी प्रकार मदन महोत्सव (जो चैत्र मास में आता है) में संभ्रांत परिवारों की विवाहित कुल वधुएँ भी अपनी सामाजिक मर्यादा छोड़कर अश्लीलता में लिप्त होती थी।(पृष्ठ १०*)

८वीं शताब्दी में दामोदरगुप्त और १२वी शताब्दी में जीमूतवाहन ने मदन महोत्सव के दिन "अश्लिलोक्ति" और "जुगुप्सोक्ति" के प्रयोग का उल्लेख किया है।

लक्ष्मीधर ने उदक महोत्सव के दिन अश्लील शब्दों और और गीतों के प्रयोग का वर्णन किया है।

कलिका पुराण में शबरोत्सव में उन्मुक्त गीत (अनैतिक , स्वैरचारी) कामुक हाव भाव एवं संभावित व्यभिचार (समूह मैथुन) का उल्लेख है। इनसे दूर रहने पर देवी का कोप होगा ऐसी मान्यता थी।

१४वीं शताब्दी में चन्देश्वर ने देवी पुराण के हवाले से कहा है कि समाज को इस प्रकार के स्वैराचार की आवश्यकता देवी के प्रकोप से बचने के लिए थी (पृष्ठ १०४)।

१७वीं शताब्दी के मध्यकालीन भारत की एक बंगाली रचना "बृहद धर्म पुराण" में उल्लेख है कि प्रजनन के अंगों के सम्बन्ध में बोलना,इस उत्सव के सूत्रपात होने पर होता था पर देवी इन अश्लिलोक्ति से प्रसन्न होती हैं।

ऐसा समाज का विश्वास था इन उत्सवों के आयोजन से भाग्य की प्राप्ति और दुरात्माओं से मुक्ति और कृषि की पैदावार में अभिवृद्धि होती है। लक्ष्मीधर ने इस बारे में स्कन्द पुराण और ब्रह्म पुराण का हवाला देते हुए लिखा है।

समय के साथ इन उत्सवों के मूल उद्देश्य में आए क्रमिक ह्रास की ओर वात्स्यायन ने संकेत किया है।

इन उत्सवों के अतिरिक्त देवयात्रा और रथयात्रा कभी उल्लेख है। देवयात्रा या रथ यात्रा का सम्बन्ध "फर्टिलिटी कल्ट" (उर्वरता पंथ) से था। इन यात्राओं में अश्लीलता की भरमार रहती थी। अत्रि संहिता, कश्यप संहिता भविष्य पुराण,भागवत पुराण में भी इसके उल्लेख हैं।

भवभूति उज्जैनी में अपने नाटक के मंचन का उल्लेख "कालप्रियानाथ" की यात्रा के अवसर पर करता है। इसी प्रकार ९वीं या १०वीं शताब्दी में मुरारी "पुरुषोत्तम यात्रा" के अवसर पर अपने नाटक अनंग राघव का उल्लेख करता है। श्रीहर्ष नैषधचरित में जगन्नाथ पुरी की रथ यात्रा का उल्लेख है।

यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वैदिक साहित्य में कई स्थानों पर यज्ञ के उपकरणों की प्रतीकात्मक तुलना स्त्री पुरुष के प्रजनन की इन्द्रियों से की गयी है।संक्षेप में यज्ञ के बिम्बों में भी स्त्री पुरुष के संयोग को देखा गया है। छान्दोग्य और बृहदारण्य उपनिषद् में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

प्राचीन ऋषियों ने बिना किसी वर्जना के अपने विचारों को और समाज को वैदिक साहित्य में अभिव्यक्त किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन और मध्यकालीन भारत को "अश्लील" और अभद्र भाषा या इशारों या प्रजनन के अंगों के उल्लेख से कोई परहेज़ नहीं था बल्कि वे उनके सामाजिक जीवन का हिस्सा थे।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित राम चरित मानस में शिव विवाह के उत्सव पर

हिमाचल ने आदर पूर्वक सब बारातियों को बुलाया।

"बिबिध पाँति बैठी जेवनारा । लागे परुसन निपुन सुआरा ।।

नारिबृंद सुर जेवँत जानी । लगीं देन मृदु गारी ।।

भोजन करने वालों की बहुत सी पंगतें बैठीं।चतुर रसोइये परोसने लगे। स्त्रियों की मंडलियां देवताओं को भोजन करते जानकर गालियाँ देने लगी।

"गारीं मधुर स्वर देहिं सुन्दरि बिंग्य बचन सुनावहीं ।

भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहिं ।।

विवाह जैसे मंगल उत्सव पर गालियों का आदान प्रदान का इससे अच्छा उदहारण क्या हो सकता है ?

राम सीता के विवाह पर भी बाबा तुलसीदास ने लोकाचार में गालियों का उल्लेख किया है,

"पंच कवल करि जेवन लागे । गारि गान सुनि अति अनुरागे । ■

बुरा ही मानिए क्योंकि ठीक नहीं है गाली

संजय कुमार

वर्ष 2015 में लीना यादव द्वारा लिखी फिल्म 'पार्च्ड' टोरंटो में अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव के दौरान दिखाई गई जिसे वर्ष 2016 भारत के सिनेमाघरों में रिलीज किया गया था। गुजरात के कच्छ क्षेत्र के ग्रामीण इलाके के रीति रिवाजों और रहन-सहन पर केंद्रित इस फिल्म में रानी, लज्जो,बिजली और जानकी नामक चार महिलाओं के खट्टे मीठे अनुभवों को समेटा गया है। इस फिल्म में पहली बार महिला किरदारों ने बिंदास होकर प्राचीन काल से पुरुषों द्वारा समय-समय पर बकी जाने वाली गालियों का न सिर्फ विरोध किया है बल्कि पुरुष प्रधान गालियों की इबारत को क्लाक वाइज उल्टा कर दिया है। मां बहन को संबोधित कर दी जाने वाली गालियों को बाप भाई के संबोधन के साथ ललकार कर पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती दी है।

जंतर मंतर के आंदोलन से हुई गालियों की बौछार एक बार फिर राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि गाली देने के मामले में लड़कियां लड़कों से बहुत आगे रही। पार्च्ड फिल्म की तरह लड़कियों ने गाली के प्रचलित स्वरूप में अपने हिसाब से कोई परिवर्तन करने की बजाय लड़कों द्वारा दी जाने वाली गालियों पर ही कब्जा कर लिया। लड़कियों ने एक तरह से यह चुनौती दी कि समाज में व्याप्त गालियों पर किसी खास वर्ग का कोई कॉपीराइट नहीं है। हैरत की बात है कि इसमें कई प्रोफेसर और पत्रकार भी शामिल हो गए हैं और इन गालियों को उचित ठहराने की दौड़ का हिस्सा बन गए हैं। इसे लड़कियों की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति बताया जा रहा है तो कोई गालीबाजों को नई गालियां रचने का सुझाव दे रहा है। उनके हिसाब से सारी गालियां पुरूषों द्वारा रची गई हैं, लिहाजा लड़कियों को नई तरह की गाली पुराण रचना चाहिए। इसके

खिलाफ का समाज का एक बड़ा तबका इस नई प्रवृत्ति की मुखालफत कर रहा है। उसका कहना है कि गालियां भले हीं समाज में सदा से चली आ रही हैं, लेकिन कम से कम उनकी सार्वजनिक स्वीकृति नहीं रही है।

इसमें दो राय नहीं कि हर सफल आंदोलन के बाद आंदोलनकारी नायक और विजेता के रूप में उभरते हैं। इस लिहाज से काकरोच जनता पार्टी के नेता जंतर-मंतर आंदोलन के फिलहाल के विजेता तो हैं हीं। इस तर्क से उनका साथ देने वाला वाला समूह भी उसी वर्ग का माना जाएगा। इतिहास हमेशा विजेताओं का ही गुणगान करता है, उसकी सफलता की बलैया लेता है। चूंकि काकरोच जनता पार्टी के नेता हीरो हैं, इसलिए उनकी ओर से दी गई गालियों को उनके गुणों के रूप में देखने की कोशिश हो रही है। तर्क दिया जा रहा है कि भारतीय समाज में शादी-ब्याह और मुंडन-जनेऊ के मौके पर प्यार से गालियां दी जातीं हैं। लिहाजा जंतर-मंतर से दी गई गालियां भी उन्हीं गालियों की तरह स्नेह की अभिव्यक्ति हैं। लेकिन क्या सचमुच ऐसा ही है ? गंभीरता से विचार करेंगे तो इसका जवाब ना में मिलता है। इस अश्लील अभिव्यक्ति का मकसद देश के संवैधानिक पद पर बैठे व्यक्ति के लिए हिकारत और घृणा का प्रदर्शन है। विशेष रूप से वर्तमान प्रधानमंत्री देश के वामपंथी और कांग्रेसी इकोसिस्टम एवं संस्कृति और परंपराभंजकों के निशाने पर तब से हैं, जब आज के जेन जी के अधिसंख्य जन्मे भी नहीं होंगे। अतीत में प्रधानमंत्री के खिलाफ कठोर शब्दों का इस्तेमाल जरूर होता था, लेकिन उनमें गालियां नहीं थीं। जंतर-मंतर का हालिया आंदोलन इसी बुनियाद पर आगे की कड़ी है। बचाव में उतरे कई लोगों का तर्क है कि ये गालियां नई नहीं हैं। कई तो खुद का उदाहरण देते हुए कहने से नहीं चूक रहे कि वे भी गाली देते हैं या फिर उनके दोस्तों के बीच गालियों का खूब आदान-प्रदान होता है। लेकिन सवाल यह है कि क्या वे ऐसी ही गालियां अपने ही बच्चों के मुख से अपने ही घरों में सुनना पसंद करेंगे। सवाल यह भी है कि क्या इन गालीबाजों को भविष्य में वे अपने परिवार का दामाद या बहू के रूप हिस्सा बनाना पसंद करेंगे। सवाल यह भी है कि क्या वे अपने ही बच्चों से स्नेह के तौर पर अपने ही माता-पिता को ऐसी गालियां दिलाना स्वीकार करेंगे। निश्चित तौर पर इन सवालों का जवाब ना में है।

हर समाज में गालियां किसी न किसी रूप में रही हैं। लेकिन वे कभी सार्वजनिक स्वीकार्यता और विमर्श का विषय नहीं रही हैं। गालियां संस्कार से जुड़ी हैं। भाषाशास्त्री शब्द शक्ति की बात करते हैं। शब्द शक्ति में शील और अश्लील को लेकर भाषा शास्त्री स्पष्ट विभाजन स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि शील ही सार्वजनिक चर्चा और अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। आधुनिक साहित्य में गालियों का प्रयोग प्रगतिशील विचारधारा के बढ़ते असर के साथ बढ़ा। लेकिन प्रेमचंद के किसी कहानी या उपन्यास में कहीं गाली या अश्लील शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। सच तो यह है कि गालियां कभी यथार्थ नहीं होती। हिंदी साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति के लिए गालियों के प्रयोग की शुरूआत हुई। लेकिन आधुनिक यथार्थवादी चिंतन से पहले के साहित्य में कभी गालियों का प्रयोग नहीं होता दिखता।

तर्क दिया जा रहा है कि जेन जी की यही भाषा है। वह ऐसे ही खुद को अभिव्यक्त करता है। ऐसे में एक सवाल यह भी उठता है कि क्या वह परीक्षा में भी वह गालियों को अपनी जवाब में शामिल करता है?और क्या वह स्वीकार्य होगा? उनके समर्थन में उतरे दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक कक्षाओं में गालियों के धाराप्रवाह प्रयोग को स्वीकार करेंगे। सवाल यह भी है कि जो पत्रकार इसका समर्थन कर रहे हैं, क्या वे अपने अखबारों और अपने स्टूडियो में उन गालियों के इस्तेमाल को तैयार होंगे? निश्चित तौर पर इन सभी सवालों का जवाब ना में है। फिर यह सवाल क्यों ना उठे कि गालियों का महिमा मंडन क्यों?

तर्क यह भी है कि जेन जी इसी तरह सोचता है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि समूचे देश का जेन जी एक जैसा नहीं है, उसकी एक मातृभाषाएं नहीं है। जरूरी नहीं कि दिल्ली और चंडीगढ़ के जेन जी की तरह मुंबई और बंगलुरू का जेन जी भी सोचता हो। जिस तरह हर इलाके के लिए लोगों का खान-पान, रहन-सहन और बोली-बानी अलग-अलग हैं, कुछ इसी तरह हर इलाके के जेन जी की सोच भी अलग है। कुछ हजार या लाख जेन जी भले ही गालियां देने में फख्र महसूस कर रहे हों, लेकिन हकीकत यह है कि अब भी देश के जेन जी का बड़ा हिस्सा संस्कारी है और उसे सार्वजनिक तौर पर गालियां बकने से परहेज है।

कुछ मार्क्सवादी लेखक गालियों को वैध ठहराने की कोशिश में इसे पुनरूत्थानवादी सोच का नतीजा बता रहे है। एक ऐसी सोच जो पुराने असभ्य रूपों,भाषिक प्रयोगों, आदतों और संस्कारों को बनाये रखता है।

भारत के विपुल साहित्य में गलियों का महिमामंडन नहीं हुआ है। अगर क्षेपक के तौर पर कहीं आया भी है तो उसे अपवाद की तरह देखा जाता है। गलियां सभ्य और असभ्य का भेद करती है। गालियां हमेशा से गलत और असभ्य मानी जाती रही हैं। महाभारत में शिशुपाल का प्रकरण आता है। जिसकी सौ गालियों को कृष्ण बर्दाश्त करते हैं, लेकिन शिशुपाल जब सौ की सीमा पार करता है तो उसका वध कर देते हैं। जाहिर है कि कृष्ण के दौर में गालियां असभ्यता की निशानी थी। उनका महिमा मंडन नहीं होता था। मध्यकाल में जरूर गालियों को प्रतिष्ठा मिलने के संकेत मिलते हैं। फिर भी उनकी सार्वजनिक स्वीकार्यता नहीं दिखती। ऐसे में प्रश्न यह है कि भारतीय समाज में किसी को सार्वजनिक तौर पर दी जाने वाली गालियों और असभ्यता को क्यों स्वीकार किया जाए? नई पीढ़ी को असभ्य बनाने की प्रक्रिया को बढ़ावा क्यों दिया जाए। सभ्यता के साथ भी कड़ी से कड़ी आलोचना करने और कठोर बातें बोलने के लिए उन्हें योग्य क्यों न बनाया जाए। ■

लोकतंत्र में संवाद ही है समाधान

प्रभात ओझा

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति उसकी संसद है। यही वह सर्वोच्च लोकतांत्रिक मंच है जहां राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य से जुड़े विषयों पर गंभीर विमर्श होता है, सरकार जवाबदेह बनती है, विपक्ष जनभावनाओं को स्वर देता है और कानूनों के माध्यम से देश के विकास की दिशा तय होती है। लेकिन अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज संसद संवाद और सहमति का मंच बनने के बजाय टकराव, आरोप-प्रत्यारोप, नारेबाजी और राजनीतिक हठधर्मिता का अखाड़ा बनती जा रही है। मानसून सत्र में जिस प्रकार लगातार गतिरोध बना हुआ है, उससे केवल संसदीय कार्यवाही ही बाधित नहीं हो रही, बल्कि लोकतंत्र की आत्मा भी आहत हो रही है। संसदीय कार्यमंत्री किरेन रिजीजू और नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी के बीच गतिरोध समाप्त करने के लिए हुई बातचीत भी किसी ठोस निष्कर्ष तक नहीं पहुंच सकी। यह स्थिति बताती है कि दोनों पक्ष अपने-अपने राजनीतिक आग्रहों में इतने उलझ गए हैं कि राष्ट्रहित पीछे छूट गया है। विपक्ष की ओर से यह शर्त रखी जा रही है कि जब तक कुछ विशेष मुद्दों पर सरकार सदन में बयान और चर्चा के लिए तैयार नहीं होती, तब तक संसद की कार्यवाही नहीं चलने दी जाएगी। दूसरी ओर सरकार भी अपने विधायी एजेंडे को आगे बढ़ाने पर अडिग है। परिणाम यह है कि संसद का बहुमूल्य समय निरर्थक विवादों की भेंट चढ़ रहा है।

लोकतंत्र में संवाद ही समाधान का सबसे प्रभावी माध्यम है। महात्मा गांधी से लेकर अटल बिहारी वाजपेयी तक भारतीय राजनीति की श्रेष्ठ परंपरा संवाद, सहमति और संवेदनशीलता की रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि पक्ष और विपक्ष दोनों अपने-अपने दुराग्रह छोड़कर संवाद की मेज पर बैठें। संसद की गरिमा इस बात में नहीं कि कौन किसे अधिक कठघरे में खड़ा करता है, बल्कि इस बात में है कि राष्ट्रहित के प्रश्नों पर कितनी गंभीरता से विचार किया जाता है। विशेष रूप से कांग्रेस और उसके नेता राहुल गांधी को यह समझना होगा कि लोकतंत्र केवल आंदोलन और विरोध का नाम नहीं है। विपक्ष की भूमिका सरकार को गिराने की नहीं, बल्कि लोकतंत्र को संभालने की होती है। यदि प्रत्येक मुद्दे पर संसद को बाधित करने की रणनीति अपनाई जाएगी तो जनता के बीच यह संदेश जाएगा कि विपक्ष के पास वैकल्पिक नीति और दृष्टि का अभाव है। लोकतंत्र में जनता केवल विरोध नहीं, समाधान भी चाहती है। यदि विपक्ष स्वयं संवाद से दूरी बनाएगा तो 'संवाद से समाधान' का आदर्श केवल नारा बनकर रह जाएगा।

सरकार की भी जिम्मेदारी कम नहीं है। लोकतंत्र में बहुमत का अर्थ मनमानी नहीं होता। सरकार को भी विपक्ष की उचित मांगों को सुनना चाहिए और जहां संभव हो, सहमति का मार्ग निकालना चाहिए। संसद किसी एक दल की नहीं, पूरे राष्ट्र की संस्था है। इसलिए सरकार को भी संवेदनशीलता, धैर्य और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देना होगा। किंतु यदि संवाद का प्रत्येक प्रयास केवल राजनीतिक शर्तों और हठधर्मिता में उलझ जाए तो समाधान की संभावनाएं स्वतः समाप्त

हो जाती हैं। आज सबसे बड़ी आवश्यकता राजनीतिक परिपक्वता की है। दुर्भाग्य से भारतीय राजनीति में आग्रह, पूर्वाग्रह और दुराग्रह का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। हर मुद्दे को चुनावी लाभ-हानि के चश्मे से देखा जा रहा है। संसद में बहस कम और राजनीतिक संदेश अधिक दिए जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र को कमजोर करती है। संसद का उद्देश्य जनकल्याणकारी नीतियों पर विचार करना है, न कि चुनावी रणनीतियों का मंच बन जाना।

देश आज आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति, रोजगार, शिक्षा, कृषि, राष्ट्रीय सुरक्षा, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और सामाजिक समरसता जैसी अनेक चुनौतियों के दौर से गुजर रहा है। ऐसे समय संसद का प्रत्येक दिन अत्यंत मूल्यवान है। यदि यह समय केवल राजनीतिक टकराव में व्यतीत होगा तो विकास की गति अवश्य प्रभावित होगी। कानूनों में विलंब, नीतिगत निर्णयों की देरी और संसदीय अस्थिरता का सीधा प्रभाव आम नागरिक के जीवन पर पड़ता है। भारतीय लोकतंत्र की मजबूती इस बात में नहीं कि संसद में कितना शोर हुआ, बल्कि इस बात में है कि वहां कितने सार्थक विचार सामने आए। स्वस्थ लोकतंत्र में सत्ता और विपक्ष प्रतिद्वंद्वी अवश्य होते हैं, किंतु शत्रु नहीं। दोनों का अंतिम लक्ष्य राष्ट्रहित होना चाहिए। यदि राजनीतिक दल इस मूल भावना को भूल जाएंगे तो लोकतंत्र केवल संख्या का खेल बनकर रह जाएगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि सभी राजनीतिक दल आत्ममंथन करें। विपक्ष अपने विरोध को रचनात्मक बनाए, सरकार अपने संवाद को व्यापक बनाए और दोनों मिलकर संसद की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करें। लोकतंत्र का भविष्य टकराव में नहीं, संवाद में सुरक्षित है। संसद की गरिमा नारेबाजी से नहीं, विचार-विमर्श से बढ़ती है।

भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में यदि संसद ही गतिरोध का प्रतीक बन जाएगी तो जनता का विश्वास कमजोर होगा, जो किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए शुभ संकेत नहीं है। समय की पुकार है कि राजनीति चुनावों की सीमाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रनिर्माण की दिशा में आगे बढ़े। पक्ष और विपक्ष दोनों यह स्मरण रखें कि वे किसी दल के नहीं, पहले भारत के प्रतिनिधि हैं। संसद की प्रत्येक घड़ी राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है। उसे हठ, अहंकार और राजनीतिक स्वार्थ की भेंट चढ़ाना भविष्य की पीढ़ियों के साथ अन्याय होगा। यदि लोकतंत्र को सशक्त बनाना है, संसद की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित करनी है और भारत को विकसित राष्ट्र बनाना है, तो केवल एक ही मार्ग है-संवाद, सहमति और राष्ट्रहित। यही भारतीय लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति है और यही संसदीय मर्यादा का सर्वोच्च आदर्श। ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 36

चुनौतियों के बीच भी कायम रही भारत की चमक

वरुण कुमार पांडे

राष्ट्रमंडल खेल केवल पदकों की प्रतियोगिता नहीं बल्कि किसी देश की खेल संस्कृति, प्रतिभा विकास, खेल विज्ञान, प्रशिक्षण व्यवस्था और दीर्घकालिक खेल नीति का दर्पण भी होते हैं। ग्लासगो (स्कॉटलैंड) में 23 जुलाई से 2 अगस्त तक आयोजित राष्ट्रमंडल खेलों का समापन भारत के लिए अनेक उपलब्धियों, कुछ अधूरी अपेक्षाओं और भविष्य की नई संभावनाओं के साथ हुआ। भारतीय दल ने 13 स्वर्ण, 17 रजत और 9 कांस्य सहित कुल 39 पदक जीतकर पदक तालिका में चौथा स्थान प्राप्त किया। यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस बार प्रतियोगिता के कार्यक्रम में निशानेबाजी, कुश्ती, बैडमिंटन, हॉकी, टेबल टेनिस इत्यादि भारत के कई पारंपरिक मजबूत खेल शामिल ही नहीं थे। इन खेलों में भारत सामान्यतः बड़ी संख्या में पदक जीतता रहा है। ऐसे में सीमित अवसरों के बावजूद चौथा स्थान बनाए रखना भारतीय खिलाड़ियों की क्षमता और जुझारूपन का प्रमाण है। पदक तालिका में ऑस्ट्रेलिया ने 70 स्वर्ण सहित कुल 171 पदक जीतकर एक बार फिर अपना दबदबा कायम रखा। इंग्लैंड 110 पदकों के साथ दूसरे तथा कनाडा 62 पदकों के साथ तीसरे स्थान पर रहा। मेजबान स्कॉटलैंड भी 39 पदकों के साथ प्रभावशाली प्रदर्शन करते हुए पांचवें स्थान पर रहा। भारत और स्कॉटलैंड के कुल पदक समान रहे लेकिन स्वर्ण पदकों की संख्या के आधार पर भारत चौथे स्थान पर रहा।

इस बार भारतीय मुक्केबाजों ने राष्ट्रमंडल खेलों के इतिहास का सर्वश्रेष्ठ अभियान चलाया। भारत ने मुक्केबाजी में सात स्वर्ण और तीन रजत सहित कुल दस पदक जीतकर नया इतिहास रच दिया। महिला मुक्केबाजों ने विशेष रूप से प्रभावित किया। जैस्मीन लम्बोरिया, प्रिया घनघस, साक्षी चौधरी और प्रीति पवार जैसी युवा खिलाड़ियों ने यह संकेत दिया कि भारतीय महिला मुक्केबाजी का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। ओलंपिक पदक विजेता लवलीना बोरगोहेन स्वर्ण से भले चूक गई लेकिन उनका अनुभव और प्रदर्शन भारतीय मुक्केबाजी की मजबूती का प्रमाण बना रहा। पुरुष वर्ग में भी सचिन सिवाच और अंकुश सहित अन्य मुक्केबाजों ने शानदार प्रदर्शन करते हुए भारत की पदक संख्या बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह सफलता दर्शाती है कि भारतीय मुक्केबाजी अब केवल कुछ खिलाड़ियों पर निर्भर नहीं रही बल्कि उसके पास प्रतिभाओं की व्यापक श्रृंखला तैयार हो चुकी है।

भारोत्तोलन ने भी भारत की प्रतिष्ठा बनाए रखी। पिछले एक दशक में इस खेल में भारतीय खिलाड़ियों ने निरंतर प्रगति की है। ग्लासगो में भी उन्होंने अपने प्रदर्शन से यह साबित किया कि विश्व स्तर पर भारत अब एक मजबूत शक्ति बन चुका है। जूडो में भारतीय खिलाड़ियों ने अपेक्षा से बेहतर प्रदर्शन किया और कई महत्वपूर्ण पदक जीतकर यह संदेश दिया कि यह खेल भी भारत में तेजी से विकसित हो रहा है। हालांकि जूडो खिलाड़ी तूलिका मान का डोपिंग रोधी नियमों के अंतर्गत तीन बार 'वेयरअबाउट्स' संबंधी जानकारी देने में विफल रहने के कारण अस्थायी निलंबन और प्रतियोगिता से बाहर होना भारतीय दल के लिए एक बड़ा झटका था। यह घटना बताती है कि विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा में केवल खेल कौशल ही नहीं, डोपिंग रोधी नियमों के प्रति पूर्ण जागरूकता और अनुशासन भी

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 37

उतना ही आवश्यक है।

एथलेटिक्स में भारत का प्रदर्शन इस बार विशेष चर्चा का विषय रहा। गुलवीर सिंह ने राष्ट्रमंडल खेलों के इतिहास में नया अध्याय जोड़ते हुए 10,000 मीटर दौड़ में रजत और 5,000 मीटर दौड़ में कांस्य पदक जीतकर इतिहास रच दिया। वे एक ही राष्ट्रमंडल खेल में ट्रैक एवं फील्ड स्पर्धाओं में दो पदक जीतने वाले पहले भारतीय खिलाड़ी बने। इससे पहले भारत को इन लंबी दूरी की स्पर्धाओं में कभी पदक नहीं मिला था। यह उपलब्धि भारतीय एथलेटिक्स के बदलते स्वरूप और वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्रणाली की सफलता का संकेत देती है। पैरा खेलों में भी भारत ने 3 स्वर्ण, 2 रजत और 2 कांस्य सहित कुल सात पदक जीतकर नया इतिहास बनाया। यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह राष्ट्रमंडल खेलों के पैरा वर्ग में भारत के अब तक के सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के बराबर है।

यदि भारतीय दल के प्रदर्शन का गहन विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि इस बार महिलाओं ने शानदार योगदान दिया। महिला खिलाड़ियों ने 8 स्वर्ण सहित कुल 16 पदक जीतकर भारतीय खेलों में बढ़ती महिला भागीदारी और उत्कृष्टता का परिचय दिया। दूसरी ओर पुरुष खिलाड़ियों ने कुल 23 पदक जीतकर संतुलित प्रदर्शन किया। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि 2026 का प्रदर्शन भारत के लिए संतोषजनक अवश्य है लेकिन ऐतिहासिक नहीं। वर्ष 2010 के नई दिल्ली राष्ट्रमंडल खेल आज भी भारत के स्वर्णिम अध्याय बने हुए हैं, जब भारत ने 38 स्वर्ण सहित कुल 101 पदक जीतकर ऑस्ट्रेलिया के बाद दूसरा स्थान प्राप्त किया था। घरेलू मैदान का लाभ अपनी जगह है लेकिन वह प्रदर्शन यह भी दर्शाता है कि यदि मजबूत खेल अवसंरचना, व्यापक खिलाड़ी आधार और सुव्यवस्थित तैयारी हो तो भारत शीर्ष देशों को कड़ी चुनौती देने की क्षमता रखता है।

भारत की खेल यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष अब यह है कि देश अब कुछ चुनिंदा खेलों तक सीमित नहीं रह गया है। पहले भारत की अधिकांश सफलता निशानेबाजी, कुश्ती, बैडमिंटन और भारोत्तोलन तक सीमित रहती थी जबकि अब मुक्केबाजी, जूडो, एथलेटिक्स और पैरा खेलों में भी लगातार नए खिलाड़ी उभर रहे हैं। यह परिवर्तन भारत की खेल नीति, खेलो इंडिया जैसी योजनाओं, बेहतर प्रशिक्षण सुविधाओं, खेल विज्ञान, पोषण और खिलाड़ियों को मिलने वाले आर्थिक सहयोग का सकारात्मक परिणाम है। हालांकि अभी भी प्रतिभा पहचान, जमीनी स्तर पर कोचिंग, खेल चिकित्सा, मानसिक प्रशिक्षण और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रतिस्पर्धी अनुभव को और मजबूत करने की आवश्यकता बनी हुई है। अब भारतीय खेल जगत की निगाहें वर्ष 2030 पर टिक गई हैं, जब राष्ट्रमंडल खेलों की मेजबानी अहमदाबाद करेगा। यह केवल एक खेल आयोजन नहीं बल्कि भारत के लिए विश्व के सामने अपनी खेल क्षमता, आधुनिक अवसंरचना और संगठनात्मक दक्षता प्रदर्शित करने का सुनहरा अवसर होगा।

ग्लासगो राष्ट्रमंडल खेलों ने भारत को यह विश्वास अवश्य दिलाया है कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी चुनौतीपूर्ण क्यों न हों, भारतीय खिलाड़ी हर मंच पर देश का गौरव बढ़ाने का सामर्थ्य रखते हैं। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन उपलब्धियों को अंतिम लक्ष्य न मानकर उन्हें ओलंपिक और वैश्विक खेल महाशक्ति बनने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में देखा जाए। जिन खेलों में भारत विश्वस्तरीय शक्ति बन चुका है, उन्हें और सशक्त किया जाए तथा एथलेटिक्स, तैराकी, जिम्नास्टिक और अन्य ओलंपिक खेलों में भी दीर्घकालिक निवेश बढ़ाया जाए। यदि भारत अपनी खेल नीतियों में निरंतरता बनाए रखता है, खिलाड़ियों को वैज्ञानिक प्रशिक्षण, विश्वस्तरीय सुविधाएं और दीर्घकालिक समर्थन उपलब्ध कराता है तो वह दिन दूर नहीं, जब राष्ट्रमंडल ही नहीं, ओलंपिक और अन्य वैश्विक प्रतियोगिताओं में भी भारत पदक तालिका के शीर्ष देशों में नियमित रूप से दिखाई देगा। ■

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 38

आरसीएल सीजन-4 से 'भूख मुक्त भारत' की अनोखी पहल

भारत में हर साल लगभग एक लाख करोड रुपए मूल्य का तकरीबन 50 मिलियन टन खाना बर्बाद होता है जबकि दूसरी तरफ करोड़ों लोग खास कर छोटे बच्चे भोजन के अभाव में खाली पेट सोने के लिए मजबूर होते हैं। इस विडंबना पूर्ण स्थिति से बाहर निकलने तथा भारत को 'भूख मुक्त देश' बनाने के संकल्प के साथ रेस्टोरेंट क्रिकेट लीग (आरसीएल) ने अपने चौथे संस्करण के जरिए क्रिकेट, सिनेमा, किसान, शेफ एवं अन्य समुदाय के साथ एकजुट होकर प्रति 10 रन बराबर 100 पौष्टिक भोजन की एक अनोखी पहल प्रारंभ करने की घोषणा की है।

आरसीएल का चौथा सीजन अक्टूबर में प्रस्तावित है। नई दिल्ली में आयोजित होने वाले सीजन 4 की औपचारिक जानकारी देते हुए रेस्टोरेंट क्रिकेट लीग एवं भूख मुक्त भारत अभियान के संस्थापक अरविंद कुमार ने बताया कि उनका उद्देश्य क्रिकेट में केवल हार जीत का नहीं बल्कि क्रिकेट को मानवता से सीधे जोड़ने का है। उन्होंने कहा कि प्रति 10 रन बराबर 100 पौष्टिक थाली के संकल्प के साथ आरसीएल क्रिकेट प्रतियोगिता लोगों को सामाजिक जिम्मेदारियों से लैश करने का अभियान है। आरसीएल क्रिकेट के मार्फत सेलिब्रिटीज, किसान, शेफ सहित विभिन्न समुदायों को एक मंच पर ला रहा है। इस पहल का उद्देश्य भूख भूख से मुक्ति, भोजन बर्बादी पर अंकुश तथा जिम्मेवार खाद्य उपयोग के लिए जागरूकता पैदा करना है।

नई दिल्ली में आयोजित पत्रकार वार्ता के दौरान वरिष्ठ अभिनेता राकेश बेदी ने आरसीएल के पहल की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनकी टीम मैच जीतने की नीयत से मैदान पर उतरेगी लेकिन टीम की असली जीत भूख के खिलाफ लड़ाई में अधिकतम योगदान से ही तय होगी। किस क्रिकेट टीम के कप्तान जुगाड़ कमलेश तथा भारतीय महिला देश क्रिकेट टीम की खिलाड़ी सुश्री नेधा ने भी कार्यक्रम की सराहना की तथा भूख के खिलाफ लड़ाई में हिस्सेदार बनने पर गौरव व्यक्त किया। सीजन 4 में शामिल होने वाली टीमों के खिलाड़ियों ने कहा कि उन्हें गर्व है कि वह ऐसी मुहिम के लिए खेलेंगे जो जरूरतमंदों की उम्मीदों को पूरा करने का प्रयास कर रही है।

आयोजकों ने बताया कि एक अत्यंत नेक उद्देश्य से आयोजित होने वाले आरसीएल सीजन 4 प्रतियोगिता को रजा मुराद, अरुण बख्शी, अवतार गिल, शाहबाज खान, बिंदु दारा सिंह और क्रिकेटर अतुल वासन ने भी समर्थन दिया है। ■

जेन जी की कविताएँ

जेन ज़ी की भाषा को समझने में पुरानी पीढ़ियों को भले कठिनाई हो, उनकी संवेदनाओं, बेचैनियों और संघर्षों को समझने में नहीं। पीढ़ियाँ अंतत: इसी तरह एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं। भाषा बदलती है, मनुष्य की आकांक्षाएँ और न्याय की इच्छा नहीं। देशों में जेन ज़ी के संघर्षों, उनके प्रतिरोध के तौर-तरीकों और उन्हें लेकर उठने वाले सवालों से संवाद किया है इन कविताओं ने। साहित्य अंतत: वही टिकता है जो अपने समय के जन-जीवन, उसके सुख-दु:ख, संघर्ष और यातना को स्वर देता है। प्रस्तुत हैं कुछ कविताएँ

ऐतराज

उन्हें
जेन जी की गालियाँ पसंद नहीं.
उन्हें पसंद हैं
सदियों से चली आती
सभ्य मुस्कानें
जिनके पीछे
छिपी रहती हैं
जातियाँ, ऊँच-नीच, स्त्री के लिए नियम
पुरुष के लिए छूट
और धर्म के नाम पर सजा हुआ पाखंड
दोहरे मानदंड.
वे कहते हैं
"बेटा, भाषा ठीक रखो."
कोई उनसे पूछे
भाषा पहले बिगड़ी या समाज?
किसने सिखाया
कि अपमान को संस्कार कहा जाए
और विरोध को असभ्यता?
युवाओं की जुबान पर उन्हें ऐतराज़ है
पर अपनी सदियों पुरानी गालियों पर नहीं
जो कभी जाति बनकर निकलीं
कभी लिंग बनकर
कभी धर्म बनकर
कभी सत्ता बनकर.
वे शब्दों को कटघरे में
खड़ा करते हैं
और इतिहास चुपचाप
उनकी ओर देखकर मुसकुरा देता है.
क्योंकि हर पीढ़ी जानती है
गाली हमेशा मुँह से नहीं निकलती
कभी-कभी पूरा समाज ही
एक गाली की तरह जीया जाता है.

हाँ, मैं भी..

हाँ, मैं भी गालियाँ देता हूँ
लेकिन किसी की माँ को नहीं
किसी की बहन को नहीं
किसी स्त्री के अस्तित्व को
अपमानित करके नहीं.

मेरी गालियाँ
उन सिंहासनों के लिए हैं
जो झूठ को संविधान की तरह पढ़ते हैं
उन चेहरों के लिए
जो मुस्कान में छल छिपाए रखते हैं.

मैं गाली देता हूँ
भूख पर भाषण देने वालों को
रोटी छीनकर
उपदेश बाँटने वालों को
नफ़रत की खेती कर
शांति का पुरस्कार लेने वालों को.

मेरी गालियाँ
शब्दकोश की अश्लीलता नहीं
समय की चोट हैं.
वे उस क्षण जन्म लेती हैं
जब अन्याय
सभ्यता का मुखौटा पहन लेता है.

हाँ,
मैं भी गालियाँ देता हूँ

क्योंकि हर बार
संयम ही सबसे बड़ा सद्गुण नहीं होता
कभी-कभी
प्रतिरोध का पहला शब्द
गुस्सा होता है.

और अगर
मेरी भाषा तुम्हें असभ्य लगती है
तो ज़रा उस व्यवस्था की भाषा भी सुनो
जो रोज़
बेरोज़गारी को सपना
लूट को विकास,
और चुप्पी को राष्ट्रभक्ति कहती है.

यक़ीन मानो
मेरी गालियाँ
उस झूठ से कहीं कम हिंसक हैं
जो हर दिन
लाखों लोगों के जीवन पर लिखा जाता है.

मैं भी गालियाँ देता हूँ
पर मनुष्य को नहीं
मनुष्यता के शत्रुओं को
शब्दों की मर्यादा तोड़ने के लिए नहीं
मर्यादा का गला घोंटने वालों के विरुद्ध.

Kalrav August 2026_Kalrav 8/12/2026 10:21 AM Page 40

RNI-UPHIN-2006/18176 Postal Regd. No. UP/GBD-199/2014-16 ISSN 2395-3829

अपने और अपने आसपास के लोगों का बचाव करें

तबीयत ठीक न होने पर घर पर ही रहें

अपने चेहरे, नाक और मुंह को छूने से बचें

खांसी-जुकाम वाले लोगों से 1.5 मीटर की दूरी बनाएं

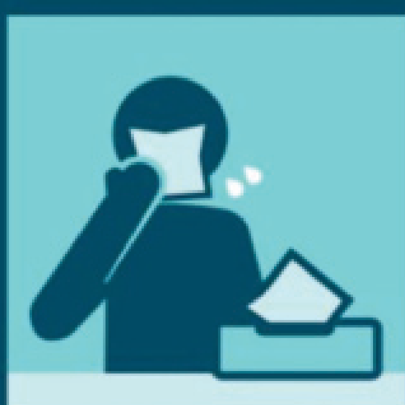

खांसी-जुकाम होने पर मुंह ढककर रखें

हाथों को लगातार धोते रहें

सहयोग एक सामूहिक प्रयास

सहयोग की ओर से जनहित मे जारी